जनवरी-मार्च, 2015
ISSN:2320-7736

विज्ञान गरिमा सिंधु

अंकः 92

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

ISSN No.: 2320-7736 (Print)

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

अंक - 92
जनवरी - मार्च, 2015

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

'विज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है– हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी व अन्य छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक सहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, विज्ञान-कथाएं, विज्ञान-समाचार, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइपं किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं। रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से बने होने चाहिए।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट-लगा लिफाफा साथ न भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/– रुपए प्रति हजार शब्द है, तथा न्यूनतम राशि 150 रुपए और अधिकतम राशि 1000 रुपए है। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

    डॉ. अशोक एन. सेलवटकर
    संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्,
    नई दिल्ली – 110066
11. अपने लेख E-mail द्वारा तथा CD में भी (फॉन्ट के साथ) भेज सकते है।
12. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

वेबसाइट : **www.cstt.nic.in**
कापीराइट © भारत सरकार 2015
प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली –110066

बिक्री हेतु पत्र–व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
आयोग, पश्चिमी खंड–7,
रामकृष्णपुरम्, सेक्टर–1,
नई दिल्ली– 110 066
दूरभाष – (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054
E-mail : vgs.cstt@gmail.com

अध्यक्ष की कलम से...

आयोग की त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका का 92वाँ अंक पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है। विज्ञान के गहनतम विषयों को हिंदी के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाना इस पत्रिका का लक्ष्य अभिप्रेत रहा है जिसका निर्वाह करते हुए यह पत्रिका वर्षों से पाठकों को ज्ञान–विज्ञान जगत का दिग्दर्शन कराती रही है। अनेक नए विज्ञान–लेखक इस पत्रिका से लगातार जुड़ते रहे हैं। इस प्रकार यह पत्रिका नए विज्ञान लेखकों को हिंदी में विज्ञान लेखन की ओर प्रवृत्त भी कर रही है।

पारि–अनुकूल विरोधों में 'कीटनाशी रसायन के जैविक विकल्प' लेख में जैविक उपायों व प्रक्रियाओं का वर्णन सरल–सुगम भाषा में किया गया है। डॉ. एस. एस. सेंगर एवं विवेकानंद प्रताप राय ने जलाभाव की अपने सारगर्भित लेख में विश्वव्यापी समस्या पर विचार करते हुए जल संरक्षण की नवीन वैज्ञानिक विधियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। उदीयमान लेखक श्री सुरेश तिवारी का लेख 'इस्पात अपशिष्ट' पाठकों के समक्ष इस्पात उद्योग के इस प्रायः अनछुए पक्ष को उजागर करता है। प्रो. राजन कुमार तिवारी के लेख 'अतिचालकता उपयोग एवं अनुसंधान' में इस क्रांतिक विषय के अत्यंत उपयोगी पक्षों का वर्णन करते हुए इससे संबंद्ध क्षेत्रों में हुए अनुसंधान का सजीव चित्रण किया गया है।

डी.आर.डी.ओ. मुख्यालय के वैज्ञानिक द्वय डॉ. घनश्याम तिवारी एवं डॉ. वी. एस. सेठी का लेख 'प्रथम मानव–रहित संयोजी वायुरहित वाहन में प्रयुक्त प्रौद्योगिकी' ने पहली बार इस अत्यंत तकनीकी विषय को विशद्तापूर्वक हमारी पत्रिका के पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

हमारे परिचित विज्ञान–लेखक डॉ. विजय कुमार उपाध्याय ने इस बार 'सन् 2012 में विज्ञान के नोबेल पुरस्कार' के विजेताओं का विवरण देकर हमारी पत्रिका की पूर्णता में वृद्धि की है।

प्रस्तुत अंक के विषय में मुझे सुधी–पाठकों की प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी। आगामी अंकों के विषय में भी सुझाव प्राप्त हो तो उनका भी स्वागत होगा।

(प्रो. केशरी लाल वर्मा)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

मार्च, 2015
नई दिल्ली

संपादकीय

वैज्ञानिक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** का अंक 92 पाठकों के सामने रखते हुए हर्ष हो रहा है कि पहली बार पत्रिका को समय पर प्रकाशित करने का प्रयास सपफल रहा है।

प्रस्तुत अंक में श्री विजय चितौरी ने कीटनाशी रसायनों के जैविक विकल्पों पर चर्चा की है और उनके लाभों से अवगत कराया है। डॉ. आर एस. सेंगर एवं विवेकानंद प्रताप राय ने जलाभाव की विश्वव्यापी समस्या पर ध्यान आकृष्ट किया है। डॉ. सुरेश तिवारी ने इस्पात अपशिष्ट के निस्तारण और उससे जुड़ी समस्याओं पर प्रकाश डाला है। प्रो. राजन तिवारी ने अतिचालकता उपयोग एवं अनुसंधान विषय पर महत्वपूर्ण पक्षों का रोचक विवरण प्रस्तुत किया है।

वैज्ञानिक डॉ. घनश्याम तिवारी एवं डॉ. वी एस सेठी ने मानव रहित संयोजी विमान की प्रौद्योगिकी पर रोचक चर्चा की है। इस अंक में पेनिसिलीन की औषधि के रूप में एवं स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हरड़ पर भी ज्ञानवर्धक चर्चा की गई है।

विज्ञान समाचार एक स्थायी स्तंभ में डॉ. दीपक कोहली ने रोचक सामग्री प्रस्तुत की है। स्थायी स्तंभों के अतिरिक्त इस अंक में 13 लेखों का समावेश है। मैं आशा करता हूँ कि हमेशा की तरह आप सभी भावी अंकों को अधिक रोचक ज्ञानवर्धक बनाने के लिए अपने लेख व सुझाव भेजते रहेंगे।

Selvatkar

(डॉ. अशोक एन. सेलवटकर)
सहायक निदेशक एवं संपादक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

मार्च, 2015
नई दिल्ली

विज्ञान गरिमा सिंधु

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी

अंक 92, जनवरी-मार्च, 2015

प्रधान संपादक
प्रो. केशरी लाल वर्मा
अध्यक्ष

संपादक
डॉ. अशोक सेलवटकर

सहयोग
श्री एस सी सक्सेना
श्री उमाकांत खुबालकर

प्र
काशन-मुद्रण व्यवस्था
डॉ. पी.एन. शुक्ल, स.नि.
श्री कर्मचंद शर्मा
प्र.क्षे.लि.

बिक्री एवं वितरण
डॉ. बी के सिंह
सहायक निदेशक

संपर्क सूत्र
संपादक
'विज्ञान गरिमा सिंधु'
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7
आर. के. पुरम, नई
दिल्ली–110066

अनुक्रम **पृ. सं.**

1.	कीटनाशी रसायनों के जैविक विकल्प	*विजय पचौरी*	1
2.	मछलियों के प्रमुख रोग एवं उनका निदान	*डॉ. सी. पी. सिंह*	6
3.	नम भूमि : जैवविविधता का स्वर्ग	*नवनीत कुमार गुप्ता*	9
4.	जल संरक्षण हेतु नवीन वैज्ञानिक विधियां एवं उचित प्रबंधन	*डॉ. आर. एस. सेंगर एवं विवेकानंद प्रताप राव*	12
5.	प्रथम मानव–रहित संयोजी वायुरहित वाहन में प्रयुक्त प्रौद्योगिकी	*घनश्याम तिवारी एवं डी. वी. एस. सेठी*	20
6.	इस्पात – अपशिष्ट	*श्री सुरेश तिवारी*	27
7.	सन् 2012 में विज्ञान विषयों के नोबेल पुरस्कार	*डॉ. विजयकुमार उपाध्याय*	30
8.	पेनिसिलीन : एक क्रांतिकारी औषधि	*डॉ. दीपक कोहली*	33
9.	अतिचालकता : उपयोग और अनुसंधान	*प्रो. राजन कुमार तिवारी*	35
10.	हरड़ : एक बहुपयोगी औषधि	*डॉ. दिलीप कुमार मौर्य*	39
11.	दाराशा नौशेरवां वाडिया	*श्री जगनारायण*	44
12.	अभिनव वैज्ञानिक जानकारी	*डॉ. विजय कुमार उपाध्याय*	46
13.	विज्ञान समाचार	*डॉ. दीपक कोहली*	50
	निकष		53
	लेखक–परिचय		54
	आयोग के प्रकाशन		55

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों, अभिव्यक्त विचारों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह पत्रिका वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए प्रकाशित की जाती है।

1

कीटनाशी रसायनों के जैविक विकल्प

विजय चितौरी

करीब पांच दशक पूर्व प्रसिद्ध विज्ञान लेखिका रसेल कार्सन ने एक पुस्तक लिखी थी *साइलेंट स्प्रिंग* यानी *मौन बसंत*। पुस्तक के माध्यम से लेखिका ने कीटनाशियों द्वारा दुनिया में संभावित भारी तबाही का सजीव चित्रण किया था। बाद में कुछ ऐसा ही दृश्य 2–3 दिसंबर 1984 की रात अपने देश में भोपाल शहर में देखा गया। जहां यूनियन कार्बाइड नामक बहुराष्ट्रीय कंपनी से रिसी गैस 'मेथिल आइसो सायनेट' से आस–पास के करीब 3 हजार लोग कुछ ही घंटों में तड़प–तड़प कर मर गए थे। हजारों लोग बाद में मरे तथा लाखों प्रभावित हुए।

कीटनाशियों के दुष्प्रभाव के चलते आज भोपाल जैसे कांड भले न हो रहे हों लेकिन सारी दुनिया में हजारों लोग आज भी इसके कारण मारे जा रहे हैं। पशुओं, वन्य जीवन, वनस्पतियों और पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्परिणामों के तो अनुमान भी नहीं लगाए जा सकते। कीटनाशियों से विकासशील देश सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। संसार में कीटनाशियों से होने वाली मौतें ज्यादातर विकासशील देशों में होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार जिन कीटनाशियों को विकसित देशों में प्रतिबंधित किया जा चुका है वहीं उन्हीं का निर्धन एवं विकासोन्मुख देशों में बेरोक–टोक धड़ल्ले से आयात और प्रयोग हो रहा है। पशु–पक्षियों और वनस्पतियों के प्राकृतिक संतुलन को भी ये जहर बुरी तरह प्रभावित कर रहे हैं। भूमि की उर्वरा शक्ति को कीटनाशियों से अपूरणीय क्षति पहुंच रही है। खाद्यान्न, फल–सब्जियां आदि प्रदूषण की चपेट में आकर जानलेवा होती जा रही है। कीटनाशियों के प्रभाव से कैंसर, हृदय रोग, प्रजनन क्षमता का ह्रास, नाड़ी दुर्बलता, गर्भस्थ शिशु में विकृति जैसी गंभीर बीमारियां बढ़ती जा रही हैं। ये कीटनाशी शरीर के वसायुक्त क्षेत्रों में संगृहीत होकर जिगर, गुर्दा, गलग्रंथि और अधिवृक्क को क्षतिग्रस्त करते हैं।

कुछ दशक पूर्व हुए व्यापक सर्वेक्षण में एक आश्चर्यचकित करने वाली बात प्रकाश में आई कि भारत में स्तनपान कराने वाली अधिकांश माताओं के दूध में घातक मात्रा में डीडीटी मौजूद रहता है। यह न केवल माताओं के लिए बल्कि स्तनपान करने वाले शिशुओं के लिए भी अत्यंत खतरनाक होता है। इसकी वजह से बालक बाल्यकाल से ही विविध रोगों का शिकार हो जाता है। उसका मानसिक एवं शारीरिक विकास असंतुलित हो जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार एक भारतीय के शरीर की वसा में डीडीटी नामक कीटनाशी का सर्वाधिक अंश पाया जाता है।

इस समस्या का दूसरा पहलू यह भी है कि अधिकांश विकासशील देशों में कीटनाशियों का इस्तेमाल करने वाले किसान अनपढ़ है। अप्रशिक्षित लोगों से कीटनाशियों के सम्यक् इस्तेमाल और सुरक्षा संबंधी प्राथमिक सावधानियां बरतने की अपेक्षा करना बेमानी है। अधिकांश कृषक इस बात से सर्वथा अनभिज्ञ रहते हैं कि कौन–सा कीटनाशी कितना घातक है और उसके इस्तेमाल में क्या सावधानी बरतनी चाहिए। वे लोग न तो निर्धारित मात्रा ही काम में लाते हैं और न ही इनके दुष्परिणामों

से बचने का प्रयास करते हैं। 'बायो साइंस' नामक पत्रिका में प्रकाशित एक शोध निबंध में डेविड पाइमेंटल और क्लाइव एडवर्ड्स नामक कृषि वैज्ञानिकों ने कहा है कि जब कीटनाशियों को फसल एवं सब्जियों पर छिड़का जाता है तो उसंका मात्र एक प्रतिशत भाग असली लक्ष्य तक पहुंच पाता है और शेष भाग प्रदूषण के रूप में फैल जाता है। विकसित देशों में तो कीटनाशियों के दुष्परिणामों से बचने के सुरक्षित उपायं विकसित कर लिए गए हैं। वहां खतरनाक दवाओं का उत्पादन भी बंद किया जा चुका है। इसके अलावा वहां कृषि मजदूरों को कीटनाशी रसायनों के इस्तेमाल के संबंध में बरती जाने वाली आवश्यक सावधानियों के बारे में पूर्ण रूप से प्रशिक्षित किया जाता है। लेकिन हमारे यहां स्थिति भिन्न है। यहां किसानों को कीटनाशी के निरापद इस्तेमाल का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। किसान नहीं जानते कि कौन–सा कीटनाशक कितना विषाक्त है और उसकी विषाक्तता फसलों, साग–सब्जियों पर फलों पर कब तक कायम रहेगी? इस अज्ञानता के कारण किसान दूसरे को तो जहरीले खाद्य पदार्थ परोस ही रहा है स्वयं भी इस्तेमाल कर रहा है।

पर्यावरण के लिए कीटनाशी कितने घातक हैं, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इसके असर से पर्यावरण का सफाईकर्मी गिद्ध लगभग लुप्त हो चुका है। घर–आंगन में अभी एक–दो दशक पूर्व तक फुदकने वाली गौरेया भी अब दिखाई नहीं दे रही हैं। उत्तर भारत में गर्मी के मौसम में आम की अमराइयों को अपनी मधुर बोली में गुंजायमान करने वाली कोयल की आवाज भी अब यदा–कदा ही सुनाई देती है और तो और पक्षियों में सबसे चालाक कौवा भी अब यदा–कदा ही दिखता है।

आखिर क्या कारण है इस तरह की घटनाओं के? वैज्ञानिकों द्वारा खोजबीन के बाद आखिरकार इन सबके मूल में जो कारण आता है वह है– हवा, पानी, भोजन और पर्यावरण का प्रदूषण जिसका एक बड़ा कारण है– कीटनाशी। गिद्ध के लुप्त होने का कारण गिद्ध के अंडों का छिलका इतना कमजोर हो जाता है कि अंडा सेते समय (हैचिंग) अंडा पक्षी के वजन को सह नहीं पाता और फूट जाता है। गिद्ध के शरीर में यह कीटनाशी मृत पशुओं के मांस से आता है। मृत पशुओं के शरीर मे कीटनाशी का जमाव उन फसलों के खाने से होता है जिन पर कभी कीटनाशियों का छिड़काव हुआ था और जिसे पशुओं को खिलाया गया।

खेती में कीटनाशियों के रूप में आज जो भी रसायन उपयोग में आ रहे हैं उनमें 77 प्रतिशत कीटनाशी, 13 प्रतिशत खरपतवारनाशी, 8 प्रतिशत फफूंदीनाशी तथा 1 प्रतिशत चूहेमार दवाएं हैं। अधिकांश कीटनाशी पानी में कम घुलनशील होते हैं तथा इनकी भूमि में गतिशीलता भी कम होती है। इसके कारण ये लंबे समय तक भूमि में बने रहते हैं। इस अवधि में ये लगातार प्रदूषण फैलाते रहते हैं और और मिट्टी के लाभदायक सूक्ष्मजीवों का विनाश करते रहते हैं। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष लगभग 50 लाख टन कीटनाशियों का उपयोग होता है। इसका बहुत छोटा हिस्सा ही उपयोग में आ पाता है। बाकी करीब 90 प्रतिशत भाग जल, वायु या अन्य माध्यमों से पर्यावरण को प्रदूषित करता है।

कीटनाशियों में सर्वाधिक उपयोग डीडीटी (डाईक्लोरो डाईफेनिल ट्राई क्लोरो एथेन) तथा बीएचसी (बेजीन हेक्सा क्लोराइड) का होता रहा है, यद्यपि वर्तमान में यह दोनों दवाएं प्रतिबंधित हो चुकी हैं। डीडीटी को 1914 में जेडलर ने बनाया था। इसके कीटनाशी गुणों की खोज 1939 में स्विस गायगी कंपनी के पॉप मूलर ने की थी। इसी खोज के लिए उन्हें 1948 में नोबेल पुरस्कार मिला था। कीटनाशी के रूप में डीडीटी का व्यापक उपयोग 1942 से शुरू हुआ। उसी वर्ष ब्रिटेन तथा फ्रांस की इम्पीरियल केमिकल इंडस्ट्रीज द्वारा बीएचसी की खोज की गई।

डीडीटी और बीएचसी का जल्दी विघटन नहीं होता और ये लंबे समय तक भूमि में बने रहते हैं। वहां से पौधों में फिर खाद्य श्रृंखला के साथ मनुष्य तथा अन्य जीवों में पहुंच जाते हैं। फसलों को पशु खाते हैं तो यह पशु के शरीर में पहुंच जाता है। पशु के दूध और मांस से यह मानव शरीर में पहुंच जाते हैं। इस पशु के मांस को खाने वाले जीवों के शरीर में भी कीटनाशी पहुंच जाते हैं। कीटनाशी की जो मात्रा जमीन में पहुंचती है, वह जमीन के सूक्ष्मजीवों एवं केंचुओं आदि को नष्ट कर देती है। यही जमीन का कीटनाशी, वर्षा जल के साथ तालाबों, नदियों और फिर समुद्र में पहुंच जाता है। इस तरह दुनिया का कोई भी प्राणी ऐसा नहीं बचा है जिसके शरीर में कीटनाशियों की उपस्थिति न हो। यहां तक कि मां के दूध में भी कीटनाशियों की उपस्थिति पाई जाती है। अध्ययनों में पाया गया है कि भारतीयों के शरीर में डीडीटी का स्तर विश्व में सर्वाधिक है। जैसा कि निम्न सारणी में दर्शाया गया है–

भारतीय खाद्य पदार्थों में डीडीटी का स्तर

खाद्य पदार्थ	डीडीटी स्तर (पी.पी.एम.)
दूध	0 - 0.20
अंडा	0 - 0.24
मक्खन	1.1 - 8.0
गेहूं	4.0 - 6.0
मूंगफली का तेल	5.0 - 7.1
दालें	5.0 - 35.0
परवल	9.0 - 16.0
नारियल का तेल	9.3 - 10.6
सरसों का तेल	10 - 12.1
सुरक्षित स्तर 0.6 पी.पी.एम (पार्ट्स प्रति मिलियन)	

स्रोत– 'प्राकृतिक खेती लेखक डॉ. उमाशंकर मिश्र

खाद्य पदार्थों में कीटनाशियों द्वारा विषाक्तता संबंधी सर्वेक्षण का निम्न निष्कर्ष चौंकाने वाले हैं–

खाद्यान्न	परीक्षित	विषाक्त	पहचाने गए कीटनाशी
गेहूं	659	190	डीडीटी, बीएचसी तथा मैलाथियान
अन्य	77	56	डीडीटी, बीएचसी
चावल	4	4	डीडीटी
दालें	32	16	डीडीटी, बीएचसी
खाद्य तेल	33	29	डीडीटी
शाक–सब्जियां	727	514	डीडीटी, बीएचसी एल्ड्रिन तथा हेप्टाक्लोर
अंगूर	44	36	मैलाथियान और पैराथियान
दूध	15	11	डीडीटी एवं एल्ड्रिन
मक्खन	2	2	डीडीटी
अंडा	21	14	डीडीटी, बीएचसी
मांस	81	66	डीडीटी एवं एल्ड्रिन

स्रोत– 'प्राकृतिक खेती लेखक डॉ. उमाशंकर मिश्र

कीटनाशी रसायनों का विकल्प

हानिकारक कीटों को नष्ट करने के लिए जैविक नियंत्रण एक प्रभावी एवं प्राकृतिक उपाय है। कुछ ऐसे जीवाणु और फफूंद खोजे गए हैं जो फसलों में रोग फैलाने वाले कीड़े–मकोड़े, जीवाणु और फफूंदी को नष्ट करते हैं। रोग नियंत्रण की इस जैविक पद्धति में ऐसे उपकारी जीवाणुओं और फफूंदों का अधिक मात्रा में उत्पादन करके इनका फसलों पर उपयोग किया जाता है। ट्राइकोडर्मा इसी तरह की कवक (फफूंद) है जो जड़ों में सड़न पैदा करने वाली कवकों (फफूंदों) को नष्ट कर देता है। इसका उत्पादन भी आसान है। किसान इसका प्रयोग इसके संबर्ध (कल्चर) को कंपोस्ट के गड्ढे में छिड़ककर खाद में ही मिलाकर आसानी से कर सकते हैं। अरहर, चना जैसी फसलों में 'उकठा' रोग की यह रामबाण दवा है। डेल्फिन दवा, जो कि

जैविक है, अनेक पतंगों की इल्लियों जैसे चने की इल्ली, पत्तागोभी की इल्ली तथा तंबाकू की इल्ली में रोग पैदा कर उन्हें मार देती है। यह दवा बाजार में उपलब्ध है। कीट नियंत्रण के लिए वैज्ञानिकों द्वारा फीरामोन संपाश नामक एक नई तकनीक खोजी गई है। फीरोमोन वह यौगिक है, जिनमें कीटों के नर को मादा की खुशबू का एहसास होता है और नर उस ओर आकर्षित होता है। कीटों की अनेक जातियों के फीरोमोन विकसित किए गए, जिनका प्रयोग फीरोमोन संपाश लगाकर किया जा सकता है जिसके लिए प्रति हेक्टेयर 8–10 फीरोमोन संपाश लगाए जाते हैं। संपाश में वयस्क नर आकर फंस जाते हैं। इसके द्वारा हमें कीटों के सक्रिय होने के विषय में जानकारी हो जाती है। चने की इल्ली, आलू की इल्ली एवं शकरकंद की व्हीनिस रोग के फीरोमोन विकसित हो चुके हैं।

खरीफ फसलों में लगने वाले लगभग सभी कीटों की वयस्क अवस्था रात्रि के समय सक्रिय रहती है और प्रकाश की ओर आकर्षित होती है। कीट नियंत्रण में कीटों की इस प्रकृति का प्रयोग हम खेत में प्रकाश प्रपंच लगाकर कर सकते हैं और कीट प्रकोप को बढ़ने से रोक सकते हैं। इसके लिए खेत में मरकरी बल्ब लगाकर उसके नीचे मिट्टी का तेल या कीटनाशी दवा का घोल एक ट्रे में रख दिया जाता है। वयस्क कीट बल्ब से टकरा कर इस घोल में गिरकर मर जाते हैं। वैसे बने–बनाए प्रकाश प्रपंच भी बाजार में उपलब्ध हैं। प्रकाश प्रपंच का प्रयोग कीट के सक्रिय होने की जानकारी तथा कीट प्रकोप की भविष्यवाणी के लिए भी किया जा सकता है। जहां बिजली न हो वहां लालटेन से प्रकाश प्रपंच बनाया जा सकता है। इसके लिए एक स्टैंड बनाते हैं। स्टैंड में लालटेन लटकाकर उसके नीचे एक चौड़ा बर्तन रखते हैं। बर्तन में पानी भरकर मिट्टी का तेल डाल दिया जाता है। इस तरह सस्ता प्रकाश प्रपंच तैयार हो जाता है।

आधुनिक जहरीले कीटनाशियों की तुलना में नीम एक सर्वोत्तम जैविक कीटनाशी है। अनाज के भंडारण, दीमकों से सुरक्षा से लेकर पेड़–पौधों की हर तरह की बीमारी में इसके विविध उपयोग आज भी लोग करते हैं। इस क्षेत्र में किसानों को यदि वैज्ञानिकों का सहयोग मिल जाए तो यह अकेला वृक्ष दुनिया भर के कीटनाशियों का स्थान ले सकता है।

नीम के कुछ आजमाएं नुस्खे

नीम सर्वोत्तम जैव कीटनाशी है। इसका प्रत्येक अंग पत्ती, फूल, फल ओर लकड़ी कीटनाशी होता है। नीम के कुछ कीटनाशी प्रयोग नीचे दिए जा रहे हैं–

1. निंबोली पाउडर को पानी में मिलकर छिड़काव करने पर फसलों में लगने वाले कीड़े–मकोड़ों से फसल की सुरक्षा होती है।
2. यदि 1.2 किलोग्राम निंबोली पाउडर को 100 किलोग्राम गेहूं या चावल में रखा जाए तो यह सूंडी से 9 माह तक तथा ट्रोगोगेमा कीट से 12 माह तक सुरक्षा प्रदान करता है।
3. यदि 1.2 किलोग्राम कुचले नीम बीज को मूंग, चना तथा चावल के 100 किलोग्राम बीज में रखा जाए तो यह उन्हें क्रमशः 8, 9, एवं 12 माह तक पल्स बीटन से सुरक्षित रखता हैं।
4. एक किलोग्राम नीमखली को 5 लिटर पानी में एक सप्ताह तक मिलाकर रखा जाता है। बीच–बीच में इसे हिलाते रहते हैं फिर इसे कपड़े से छानकर 10 लिटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने पर नींबू के पर्ण सुरंगक (लीफ माइनर) तथा पत्ती भक्षक कीड़े से रक्षा होती है।
5. 12 लिटर पानी + 3 चम्मच कपड़ा धोने का सोडा तथा 3 चम्मच नीम का तेल अच्छी तरह मिलाकर छिड़काव करने पर सफेद मक्खी, जेसिड के अंडे, माहू, बग्स आदि का नियंत्रण होता है।
6. नीम की सूखी पत्तियों को अनाजों के साथ

रखने पर यह अनाज को 135 दिन तक कीटों से सुरक्षित रखता हे।

7. नीम तेल को 500 मिली. लिटर प्रति कुंतल चने के बीज के हिसाब से मिलाने से यह बीज को 180 दिन तक सुरक्षित रखता है।
8. एक किलोग्राम निंबोली पाउडर प्रति कुंतल के हिसाब से गेहूं, ज्वार या मक्का में रखने पर यह 135 से 356 दिन तक सुरक्षा देता हैं
9. एक किलोग्राम नीम पत्ती का रस दस लिटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने पर टिड्डी, माहू, बाली कीट (एफिड्), सैनिक कीट (इयर वर्म) आदि का नियंत्रण होता हैं।
10. 10 मिली. लिटर नीम तेल + 5 ग्राम साबुन के आधे लिटर पानी में अच्छी तरह मिलाया जाता है फिर 4.5 लिटर पानी में पतला किया जाता है। इस घोल का छिड़काव करने पर माहू का नियंत्रण किया जा सकता है। तीन लिटर नीम तेल प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने पर कपास गोलक कृमि (कॉटन बॉल वर्म) से सुरक्षा मिलती है।

निंबोली से कीटनाशी बनाना

500 ग्राम निंबोली को कूट पीसकर पाउडर बनाकर इसे एक बाल्टी में 10 लिटर पानी में मिलाएं। इसे रात भर रखा रहने दें। इस मिश्रण में 3 चम्मच कपड़ा धोने वाला सोडा या कोई अपमार्जक (डिटर्जेंट) मिलाएं। इसके बाद इस मिश्रण को कपड़े से छान लें। अब यह कीटनाशी विलयन फसलों पर छिड़काव के लिए तैयार है। यदि कीड़ों का असर अधिक है तो इसे अधिक मात्रा में छिड़कें। आवश्यकता हो तो 10 से 14 दिन बाद दुबारा छिड़काव करें। इससे कीट–पतंगे, भुनगे आदि इल्लियां फसल को खाना बंद कर देते हैं और उनकी मृत्यु हो जाती है।

कीट नियंत्रण की अन्य जैविक विधियां

1. देशी गाय के मूत्र को पंद्रह दिन में एक बार यदि फसल पर छिड़का जाए तो फसल कीट मुक्त होगी और पौधे अधिक स्वस्थ होंगे तथा उनसे उत्पादन अधिक होगा।
2. निंबोली अर्क, तंबाकू और शरीफा के बीज को कूटकर उसे पानी में मिलाकर छिड़काव करने पर कीट नियंत्रण होता है। तांबे के बरतन में गोमूत्र तथा नीम की खली को 10 दिन तक बंद रखा जाता है। फिर इसे आधा रह जाने तक उबाला जाता है। 12 घंटे तक घोल को ठंडा करने के बाद इसमें मिट्टी का तेल तथा लहसुन का चूर्ण मिलाकर और छानकर इसका उपयोग तेज कीटनाशियों के रूप में किया जा सकता है।

जैविक खेती में रासायनिक कीटनाशियों से तो परहेज किया ही जाता है उर्वरकों से भी परहेज किया जाता है। बदले में कंपोस्ट, खाद, हरी खाद, नीलहरित शैवाल एवं अन्य जैविक विधियों द्वारा जमीन की उर्वरता बढ़ाई जाती है। पश्चिमी देशों में जैविक खेती द्वारा तैयार अनाज, फल और सब्जियों की भारी मांग है। हमारे देश में भी इस क्षेत्र में जागरूकता बढ़ रही है।

मध्यप्रदेश सहित कई राज्य जैविक खेती को बढ़ावा देने की दिशा में महत्वपूर्ण काम कर रहे हैं। उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश तथा पूर्वोतर के अन्य पहाड़ी प्रदेशों में भी परंपरागत खेती यानी जैविक खेती आज भी हो रही है।

ooo

2

मछलियों के प्रमुख रोग एवं उनका निदान

डॉ. सी. पी. सिंह

जलीय जीव अपने वातावरण में स्वयं को भली–भांति संतुलित रखने की क्षमता रखते हैं। परंतु जब रख रखाव में लापरवाही या अनियमितता हो जाती है, तो जलीय वातावरण अत्याधिक प्रदूषित हो जाता है, ऐसी स्थिति में मछली में रोगों के संक्रमण की प्रबल संभावना बन जाती है। प्रायः यह देखा गया है कि अन्य प्राणियों की अपेक्षा मछलियों में रोगों का प्रकोप कम दिखाई देता है।

रोगग्रस्त होने पर मछली के व्यवहार में सामान्य परिवर्तन दिखाई देता है। जैसे– असामान्य गति से चक्कर लगाना, उल्टा–सीधा तैरना, शिथिलता एवं अन्य।

मछली बीमार है यह जानने के लिए परीक्षण किया जा सकता है। मछली को हाथ में पकड़कर एकतरफ झुकाने पर यदि मछली का नेत्रगोलक मछली के तिरछे होने के साथ मुड़ जाता है तो मछली रोगग्रस्त है। मछलियों में अलग–अलग बीमारियों के लिए अलग–अलग लक्षण पाए जाते हैं। कुछ लक्षण निम्नवत् हैं:–

1. बीमार मछली हमेशा सतह पर रहने की कोशिश करेगी और कठोर सतह पर शरीर रगड़ती है।
2. बीमार मछली समूहों में न रहकर किनारे पर अलग दिखाई देती है। इसके सामान्य व्यवहार एवं तैरने में काफी अंतर आ जाता है।
3. मछली की आंखों में सूजन आ जाती है।
4. बीमार मछली भोजन ग्रहण नहीं करती है।

मछलियों में पाए जाने वाले प्रमुख रोग एवं निदान

वाताशय (स्विम ब्लैडर) संक्रमण : यह रोग कामन कार्प तथा अन्य शीतजलीय मछलियों में पाया जाता है। जो रैव्डो वाइरस कार्पियो नामक विषाणु से फैलता है। इस रोग में मछली के गलफड़े (गिल) तथा वाताशय सूख जाते हैं।

निदान : इस रोग के निदान हेतु तालाब की स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिए, तथा पोटैशियम परमैंगनेट का छिड़काव तालाब में यदा–कदा करते रहना चाहिए।

स्प्रिंग विरिमिया : यह रोग रैव्डो वाइरस कार्पियो नामक विषाणु से फैलता है। रोगगस्त होने पर मछली की शल्क गुहा में पानी जैसा पदार्थ भर जाता है। जिससे मछली फूली हुई प्रतीत होती है। साथ ही गलफड़े एवं त्वचा में घाव बन जाते हैं।

निदान : पोटैशियम परमैंगनेट (लाल दवा) को तालाब में छिड़का जा सकता है। यदि इस बीमारी का प्रकोप अत्याधिक हो जाए तो मछली को बाहर निकालकर नमक के पानी से अच्छी तरह धोकर इलाज शुरु करें।

रक्तस्रावी पूतिजीव रक्तता (हिमोरैजिक सेप्टीसीमिया) : यह रोग प्रमुखतः एरोमोनास–ल्यूरोसंस नामक विषाणु से फैलता है। इसमें मछली की वाह्य त्वचा, पंखों, मुखगुहा एवं आंतरिक अंगों से खून निकलता

है। अत्यधिक रक्तस्राव के कारण मछलियां मर जाती हैं।

उपर्युक्त बीमारी का निदान संभव नहीं है। यदि दो चार मछलियों में यह प्रकोप दिखाई दें तो सभी मछलियों को निकालकर गढ्ढे में दबा देना चाहिए।

पंख एवं पूंछ की सड़न : यह सफेद धब्बे वाली बीमारी है। प्रारंभिक अवस्था में पंख के आधार पर सफेद धब्बे दिखाई देते हैं। धीरे–धीरे ये धब्बे पूरी शरीर पर फैल जाते हैं। बाद में मवाद के कारण जीवाणुओं का प्रकोप भी बढ़ जाता है।

निदान : सर्वप्रथम मछली को दो प्रतिशत नमक के घोल से धोकर चिपचिपाहट दूर करें। तत्पश्चात् तूतिया ($CuSO_4$) का घोल बनाकर 5 से 10 मिनट तक डिप ट्रीटमेंट दें। यह प्रक्रिया तब तक अपनाएं जब तक मछली ठीक न हो जाएं। दवा के इस्तेमाल में पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए। उसे पूर्ण रूप से पानी में घुला हुआ होना चाहिए। यदि कोई कण मछली खा जाए तो मछली के मरने की प्रबल संभावना होती है।

व्रण (अल्सर) या फोड़े : अक्सर मछली के शरीर में फोड़े देखने को मिलते हैं। जो कुछ समय बाद घाव में परिवर्तित हो जाते हैं।

निदान : तूतिया ($CuSO_4$) 1:2000 का लेप लगाने से उपरोक्त बीमारी से निजात मिल सकती है।

जलशोफ (ड्रोप्सी) : यह रोग सियोडोकोनास पक्टेव नामक जीवाणु के कारण होता है। शल्क गुहा में पानी भरने के कारण मछली फूली हुई प्रतीत होती है।

निदान : पोटैशियम परमेंगनेट का घोल तालाब में डालने पर रोग से निजात मिल सकती है।

व्रणी (अल्सिरेटिव) रोग संलक्षण : यह मछलियों में पाया जाने वाला अत्यधिक गंभीर रोग है। जब पानी अम्लीय होता है तो मछली में इस रोग की प्रबल संभावना बनी रहती है। रोगग्रस्त मछली पानी की सतह पर धीरे–धीरे तैरती दिखाई देती है तथा तैरने का ढंग भी असाधारण होता है। प्रारंभिक अवस्था में लाल चकत्तेनुमा निशान दिखाई देने वाले ये चकत्ते बाद में फफोलों का रूप ले लेते हैं। इस रोग में मछली के पंख टूटन के साथ–साथ कवक का प्रकोप भी दिखाई देने लगता है।

निदान : बीमारी का संकेत मिलते ही तालाब में चूने का प्रयोग करना चाहिए। साथ ही पोटेशियम परमेंगनेट 0.2–0.5 मिली. ग्राम (प्रतिलिटर) के प्रयोग से भी इस रोग पर काबू पाया जा सकता है।

सेप्रोलैग्निया रोग : यह रोग सेप्रोलैग्निया पैरासिटिका नामक जलीय कवक द्वारा उत्पन्न होता है। इसमें मछली के आँख, मुंह पर स्लेटी भूरे एवं सफेद धब्बे दिखाई देते हैं।

निदान : इस रोग के निदान हेतु पोटैशियम परमेंगनेट (1:2000) का प्रयोग फायदेमंद होता है।

क्लोम–कवकता या गल्फड़े सड़ना (ब्रैंकयोमाइकोसिस) : यह रोग मछलियों में ब्रैंकोमाइसिस नामक कवक द्वारा फैलता है। इस रोग में गल्फड़ों की शिराएं नष्ट हो जाती हैं। धीरे–धीरे गल्फड़े पूर्णक्षमता से श्वसन कार्य नहीं कर पाते हैं। फलतः दम घुटने के कारण मछलियों की मृत्यु हो जाती है। यह रोग तालाब में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों एवं अत्यधिक तापमान के कारण फैलता है।

निदान : 2 से 3 कि.ग्रा. प्रति नाली चूना प्रत्येक माह तालाब में अवश्य डालना चाहिए। साथ ही तालाब की स्वच्छता का विशेष ध्यान देना चाहिए।

कोस्टिएसिस : यह रोग प्रमुखतः कास्टिया नामक प्रोटोजोआ के कारण फैलता है। अंगुलिकाओं में इस रोग का प्रकोप वहुधा देखा गया है। इस रोग में परजीवी बड़ी संख्या में पंख, त्वचा एवं गल्फड़ों में देखे जा सकते हैं।

निदान : रोगी मछली की रोकथाम हेतु 1:25000 फार्मेल्डिहाइड या 1:500 ग्लैशल ऐसिटिक अम्ल का प्रयोग किया जा सकता है।

श्वेत चित्ती रोग : यह रोग इक्थ्योप्थीरियस मल्टिकिलेस नामक प्रोटोजोआ से फैलता है। मछली के शरीर पर छोटे–छोटे गोलाकार सफेद रंग के उभार स्पष्ट दिखाई देते हैं।

निदान : निवारण हेतु मछली को फॉर्मेलिन के घोल में 5 से 7 मिनट तक रखकर पुनः स्वच्छ जल में डाल दें।

आर्गुलोसिस : यह रोग क्रिस्टेशियन परजीवी आर्गुलोसिस पॉलियोस्थियस नामक परजीवी द्वारा फैलता है, जो मछली की जूँ भी कहलाती है। यह चपटी एवं धूसर रंग की होती है। ये त्वचा से चिपक कर खून व ऊतक का रस चूसती है। प्रभावित मछली रुग्ण तथा विकृत दिखाई देती है। शरीर के शल्क ढीले पड़ जाते हैं।

निदान : ग्लैशल ऐसिटिक अम्ल के तनु में 111000 के अनुपात में डुबोकर तुरंत बाहर निकाल दें।

उपर्युक्त रोगों के निदान हेतु सर्वप्रथम तालाब की स्वच्छता एवं तालाब में घोंघो की सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि ज्यादातर कृमि परजीवी अपने जीवन चक्र का कुछ भाग इन घोंघो में व्यतीत करते हैं। इनको नष्ट करने से परजीवियों का जीवन चक्र पूरा नहीं होगा, जिससे मछलियों को रोगों से बचाया जा सकता है।

ooo

3

नम भूमि : जैवविधिता का स्वर्ग

नवनीत कुमार गुप्ता

प्रकृति अपने विविध रूपों में हमारे पृथ्वी ग्रह को सुंदर बनाए हुए हैं। नम भूमि प्रकृति का ऐसा ही अनोखा और अनुपम रूप है। असल में नम भूमि नमी या दलदली क्षेत्र होते हैं जो अपनी अनोखी पारिस्थितिकी के कारण महत्वपूर्ण हैं। नम भूमि के अंतर्गत झीलें, तालाब, दलदली क्षेत्र, हौज, कुंड, पोखर एवं तटीय क्षेत्रों पर स्थित मुहाने, लगून, खाड़ी, ज्वारीय क्षेत्र, प्रवाल क्षेत्र, गरान (मैंग्रोव) वन आदि ऐसे क्षेत्र शामिल होते हैं। गुजरात का नलसरोहर, ओड़िशा की चिल्का झील और भितरकनिका गरान क्षेत्र, राजस्थान का केऊलादेव राष्ट्रीय उद्यान, दिल्ली का ओखला पक्षी अभयारण्य आदि नम भूमि के कुछ उदाहरण हैं।

नम भूमि का अर्थ है नमी या दलदली क्षेत्र। नम भूमि की मिट्टी झील, नदी, विशाल तालाब के किनारे का हिस्सा होती है जहां भरपूर नमी पाई जाती है। इसके कई लाभ भी हैं। वह क्षेत्र नम भूमि कहलाता है जिसका सारा या थोड़ा भाग वर्ष भर जल से भरा रहता है। भारत में नम भूमि ठंडे और शुष्क इलाकों से होकर मध्य भारत के कटिबंधी मानसूनी इलाकों और दक्षिण के नमी वाले इलाकों तक में फैली हुई है। हमारे देश में दक्षिण प्रायद्वीप में उपस्थित नम भूमि अधिकतर मानव–निर्मित हैं जिन्हें 'येरी' यानी हौदी कहते हैं। यह 'येरी' मानव आवश्यकताओं के लिए जल उपलब्ध कराती है।

भारत में नम भूमि

भारत में नम भूमि कुल भौगोलिक क्षेत्रफ़ल के 4.63 प्रतिशत क्षेत्रफल पर फैली हुई हैं यानी कुल 15,26,000 वर्ग किलोमीटर भूमि पर। इनसे अलावा 2.25 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल से कम आकार वाली करीब 5,55,557 छोटी–छोटी नम भूमि भी चिह्नित की गई हैं। कुल नम भूमि में से 69.22 प्रतिशत क्षेत्र आंतरिक नम भूमि क्षेत्र हैं, जबकि तटीय नम भूमियों का प्रतिशत 27. 13 है।

प्राकृतिक संतुलन और नम भूमि की भूमिका

नम भूमि के असंख्य लाभों के कारण ये हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। असल में नम भूमि की मिट्टी झील, नदी, विशाल तालाब या किसी नमीयुक्त किनारे का हिस्सा होती है, जहां भरपूर नमी पाई जाती है। जल स्तर को बढ़ाने में भी नम भूमि की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके अलावा नम भूमि जल को प्रदूषण मुक्त बनाती है।

बाढ़ नियंत्रण में भी इनकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। नम भूमि तलछट का काम करती है जिससे बाढ़ जैसी विपदा में कमी आती है। नम भूमि शुष्क काम के दौरान पानी को सहजे रखती है। बाढ़ के दौरान नम भूमि पानी का स्तर कम बनाए रखने में सहायक होती है। इसके अलावा ऐसे समय में नम भूमि पानी में मौजूद तलछट और पोषक तत्वों को अपने में समा लेती है और सीधे नदी में जाने से रोकती है। इस प्रकार झील, तालाब या नदी के पानी की गुणवत्ता बनी रहती है। समुद्री तटरेखा को स्थिर बनाए रखने में भी नम भूमि का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ये समुद्र द्वारा होने वाले कटाव से तटबंध की रक्षा करती हैं।

जैवविविधता का स्वर्ग

नम भूमि जैव विविधता संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण है। हमारे देश की पारिस्थिति सुरक्षा में इन नम भूमियों की अहम भूमिका है। खाद्यान्नों की कमी और जलवायु परिवर्तन के बढ़ते खतरों के बीच हमें नम भूमि को बचाने की जरूरत है ताकि वे अपनी पारिस्थितिकीय भूमिका निभा सकें। नम भूमि जैवविविधता को सुरक्षित रखती हैं। ये शीतकालीन पक्षियों और विभिन्न जीव–जंतुओं का आश्रय स्थल होती हैं। विभिन्न प्रकार को मछलियों और जंतुओं के प्रजनन के लिए भी ये उपयुक्त होती हैं। इनमें समुद्री तूफान और आंधी के प्रभाव को सहन करने की क्षमता होती है।

नम भूमि पानी के संरक्षण का एक प्रमुख स्रोत है। इन पर विशेष मौसम में कई पक्षी आते हैं। पक्षियों का कलरव और रंगरूप, हमेशा से पक्षी निहारकों को इन नम भूमि की ओर आकर्षित करते हैं। भरतपुर स्थित केऊलादेव पक्षी विहार, कई प्रवासी पक्षियों का पसंदीदा स्थल है।

आर्थिक महत्व

ये अपने आस–पास बसी मानव बस्तियों के लिए जलावन, फल, वनस्पतियां, पौष्टिक चारा और जड़ी–बूटियों का स्रोत होती हैं। कमल जो कि दुनिया के कुछ विशेष सुंदर फूल होने के साथ ही भारत का राष्ट्रीय फूल है वह भी नम भूमि में उगता है।

अनोखी नम भूमि – लोकटक झील

मणिपुर की लोकटक झील देशी और विदेशी सैलानियों के लिए आकर्षण का केंद्र है। इस झील को दुनिया भर में अपनी तरह का अकेला 'तैरता वन्य प्राणी विहार' का दर्जा हासिल है। लेकिन प्रदूषण के कारण अब इसमें हानिकारक खरपतवार उग रहे हैं। पारिस्थितिक दृष्टि से यह झील अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस झील में एक तैरता पौधा उगता है जिसे 'बुल लामजाओ खरपतवार' या 'फुमड़ी' कहते हैं। यह पौधा केवल यहीं उगता है और कहीं नहीं। इस पौधे पर एक हिरण की जाति पलती है जिसे पिगभी हरिण (संगाई) कहा जाता है। फुमड़ी पौधे की संख्या कम हो जाने से पिगभी हरिण (संगाई) की संख्या भी कम होने लगी है। इनकी संख्या 100 से कम हो गई है।

नम भूमि पर मंडराते खतरे

वर्तमान में भारत की बहुत–सी नम भूमि के भविष्य पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। नम भूमि पर प्रदूषण का संकट है। तेजी से बढ़ते कंक्रीट के जंगल, उद्योग, शहरीकरण के लिए जलग्रहण क्षेत्र से छेड़खानी, हजारों टन रेते का जमाव और कृषि रसायनों के जहरीले पानी का आ मिलना नम भूमि की बर्बादी का कारण है।

नम भूमि की बर्बादी के साथ ही जंगली जानवरों या पौधों पर संकट मंडरा रहा है। उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल के दलदली क्षेत्र में 'दलदली हिरण' पाया जाता है। ये हिरण भी कम हो रहे हैं। इस जाति के हिरणों की संख्या लगभग एक हजार बची है। इसी प्रकार तराई वाले क्षेत्रों में पाई जाने वाली फिशिंग कैट यानी मच्छीमार बिल्ली पर भी बुरा असर पड़ रहा है। साथ ही गुजरात के कच्छ क्षेत्र में जंगली गधा भी खतरे में है।

असम के काजीरंगा और मानव दलदलीय क्षेत्रों से जुड़ा एकसींगी भारतीय गैंडा भी विलुप्तप्राय प्राणियों की श्रेणी में शामिल है। इसी प्रकार अनेक ऐसे जीव जो नम भूमियों से जुड़े हैं संकट में है, जैसे– औटर, गंग (गैंजेटिक) डॉल्फिन, डूरोंग, एशियाई जलीय भैंस आदि।

नम भूमि प्रवासी पक्षियों की पनाह–स्थली के रूप में विख्यात हैं। ऐसे क्षेत्र पट्ट शीर्ष राजहंस, पनकौआ, बायर्स वॉचार्ड, ओस्प्रे, इंडियन स्किम्मर, श्याम गर्दनी बगुला, संगमरमरी टील, बंगाली फ्लोरीकॉन पक्षियों का मनपसंद स्थल होते हैं।

रेंगने वाले जीव जैसे समुद्री कछुआ, घड़ियाल, मगरमच्छ, जैतूनी रिडली और जलीय मॉनीटर पर भी नम भूमियों के प्रदूषित होने के कारण संकट मंडरा रहा

है। जीवों के अतिरिक्त कुछ वनस्पतियां भी नम भूमि के संकट से प्रभावित हो रही हैं।

नम भूमि के संरक्षण के प्रयास

कई वनस्पतियां, सरीसृप, पक्षियों और जनजाति आदि की निवास स्थली इन नम भूमि में बढ़ते प्रदूषण, बिगड़ती जलवायु और विकास के दुष्परिणामों से प्रभावित हैं। भारत में नम भूमि के संरक्षण के लिए पर्यावरण मंत्रालय द्वारा 1987 से एक कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत अभी तक 15 राज्यों में 27 नम भूमि क्षेत्र चिह्नित किए गए हैं। इसके अंतर्गत पंजाब में कंजली और हिरके, ओड़िशा में चिल्का, मणिपुर में लोकटक, चंडीगढ़ में सुखना और हिमाचल में रेणुका क्षेत्र हैं। इन जगहों में संरक्षण और उनके बारे में जागरूकता लाने के प्रयास किए जा रहे हैं। इसके अलाव केऊलादेव राष्ट्रीय उद्यान, सुंदरवन, मनास और काजीरंगा को 'अंतरराष्ट्रीय विरासत' का दर्जा दिया गया है। इन क्षेत्रों में देश–विदेश के मेहमान पक्षी आते हैं। इसलिए इनको बचाने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं।

नम भूमि व्यापक स्तर पर आर्थिक, सामाजिक व संस्कृति का आधार रही हैं। इसीलिए 2 फरवरी 1971 को 70 राष्ट्रों ने दलदलों पर एक सम्मेलन ईरान के रामसर शहर में बुलाया था। इसी दिन नम भूमि के संरक्षण के लिए वहां एक अंतरराष्ट्रीय संधि हुई थी जिसे 'रामसर संधि' भी कहा जाता है। अब इस संधि पर 163 देशों ने हस्ताक्षर कर दिए हैं। यह संधि विश्व की दुर्लभ व महत्वपूर्ण नम भूमि को रामसर स्थल के रूप में चिह्नित करने के साथ ही अनेक अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर नम भूमि के संरक्षण के लिए जागरूकता का प्रसार करती है। इसीलिए 1997 से प्रत्येक वर्ष 2 फरवरी को 'विश्व नम भूमि दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

अभी तक विश्व भर की 2062 नम भूमि को रामसर क्षेत्रों के रूप में चिह्नित किया गया है जो करीब 19,72,58,541 हेक्टेयर में फैली हुई हैं। इन क्षेत्रों में से 35 प्रतिशत क्षेत्र पर्यटन–संभावित क्षेत्र हैं। इनमें से 45 नम भूमियों को विश्व विरासत सूची में शामिल किया गया है। इस सूची में भारत का केऊलादेव राष्ट्रीय उद्यान भी शामिल है।

भारत ने इस समझौते पर 1981 में हस्ताक्षर किए और यहां की केवल 26 नम भूमियों को रामसर संरक्षित दलदलों का दर्जा हासिल है जो 6,89,131 हेक्टयर में फैली हैं। ओड़िशा की चिल्का झील और राजस्थान का केऊलादेव राष्ट्रीय पार्क रामसर के तहत संरक्षित होने वाले पहले दो दलदल थे। भारत का सबसे बड़ा रामसर क्षेत्र भीमबंद–कोल वेटलैंड (1512.5) केरल में है।

वैसे हमारे देश में भी नम भूमि पर्यटन पर ध्यान दिया जा रहा है जिसके तहत गुजरात राज्य में पिछले तीन सालों से 'ग्लोबल बर्ड वॉचर्स कॉन्फरेन्स' की जा रही है। ऐसे आयोजनों का उद्देश्य यही होता है कि नम भूमियों को बढ़ते प्रदूषण, बदलती जलवायु और अनियंत्रित विकास से उत्पन्न खतरों आदि से बचाया जा सके।

ooo

4

जल संरक्षण हेतु नवीन वैज्ञानिक विधियां एवं उचित प्रबंधन

डॉ. आर. एस. सेंगर एवं विवेकानंद प्रताप राव

जल एक ऐसा पदार्थ है जो प्रायः इतनी आसानी से उपलब्ध हो जाता है कि हम उसका महत्व ही नहीं समझ पाते। सुबह उठकर मुंह धोने से लेकर रात में पैरों को धोकर बिस्तर पर जाने तक, यानी कि हर छोटे बड़े कार्य के लिए जल की आवश्यकता होती है। शहरों में तो नल खोला और पानी आ गया लेकिन कई पहाड़ी क्षेत्रों और रेगिस्तानी प्रदेशों में महिलाओं का लगभग आधा दिन मीलों पैदल चलकर जल को इकट्ठा करने में गुजरता है। दरअसल बढ़ती आबादी, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और उपलब्ध संसाधनों के प्रति लापरवाही ने मनुष्य के सामने जल का संकट खड़ा कर दिया है। जैसा कि हम सभी लोग जानते हैं कि जीवन जल में ही पैदा हुआ और फला–फूला। इसीलिए कहा गया है कि जल ही जीवन है। जल के अभाव में जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। हमारे मुल्क में शुद्ध ा पेयजल एक गंभीर और ज्वलंत समस्या है। कितनी विडंबना है कि गंगा और गोदावरी का देश भारत भी प्यासा है। भारत का एक कोई ऐसा अंचल नहीं है, जहां शुद्ध पेयजल की समस्या न हो। यह समस्या सरकार के लिए ही नहीं बल्कि संपूर्ण मानव के लिए बड़ी चुनौती है। विकास के साथ–साथ जल की समस्या दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। ग्रामीण अंचल में पेयजल का अभाव अरसे से रहा है। औद्योगीकरण एवं बढ़ती जनसंख्या के कारण शहरों में भी शुद्ध पेयजल की किल्लत बढ़ती जा रही है। ग्रामीण अंचल के लोग पेयजल के लिए अधिक परिश्रम करते हैं। गर्मी के दिनों में यह स्थिति और भी विकट हो जाती है। कई किलोमीटर दूर चलकर लोग आवश्यकता के अनुसार पानी जुटाते हैं। उन्हें जो जल मिलता है वह अधिकांशतः प्रदूषित ही होता है। प्रदूषित जल शहरी लोगों के लिए एक बड़ी समस्या है। लोगों को पेयजल के लिए केवल श्रम ही नहीं करना बल्कि पैसा भी खर्च करना पड़ता है।

विश्व की नदियों में प्रतिवर्ष बहने वाले 41000 घन कि.मी. जल में से केवल 14000 घन कि.मी. का ही उपयोग किया जा सकता है। यह 14000 घन कि.मी. जल ऐसे स्थानों से गुजरता है जहां आबादी नहीं है और यदि है भी तो उपयोग करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इस प्रकार केवल 9000 घन कि.मी. जल का उपयोग पूरे विश्व की आबादी करती है। स्थानीय जल की उपलब्धता जनसंख्या से बहुत प्रभावित होती है। कनाड़ा में प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 122000 घन मीटर है। जबकि माल्टा में मात्र 70 घन मीटर है। सहारा रेगिस्तान के आस–पास स्थित देश और मध्य पूर्व एशिया के देशों में जल का जबरदस्त अभाव है। भूतपूर्व सोवियत संघ, आस्ट्रेलिया, अमेरिका और भारत के कई क्षेत्रों में भी पानी की कमी है। जहां बेल्जियम में प्रतिवर्ष 12.5 घन कि.मी. जल का उपयोग होता है वहीं ओमान में उपयोग के लिए मात्र 0.66 घन कि.मी. जल उपलब्ध है। बेल्जियम में यह मात्र 1270 घन मीटर प्रतिवर्ष है और ओमान में 540 घन मीटर प्रतिवर्ष है।

विशेषज्ञों के अनुसार, यदि 2000 या इससे अधिक व्यक्तियों के बीच प्रतिवर्ष 10 लाख घन मीटर की खपत हो तो जल की कमी हो जाती है। इतने ही जल के लिए इंग्लैंड, इटली, फ्रांस, भारत और चीन में औसतन 350 व्यक्ति है, जबकि टयूनीशियम में 2000 व्यक्ति और इस्राइल तथा सउदी अरब में 4000 व्यक्ति है। नेपाल, स्वीडन, इंडोनेशिया और बांग्लादेश में प्रतिवर्ष 10 लाख मीटर जल 100 से थोड़े ज्यादा और जापान में 2000 व्यक्ति इतने जल का उपयोग कर पाते हैं। एक अनुमान के अनुसार, विश्व में प्रतिवर्ष 2600 से 3500 घन कि.मी. के बीच जल की वास्तविक खपत है। उत्तरी अमरिका मे जल की वास्तविक खपत 2230 घन मीटर प्रतिवर्ष, पश्चिम यूरोप के देशों में 656 घन मीटर; जापान, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में 945 घन मीटर प्रति व्यक्ति है। वर्ष 1950 में विश्व में प्रति व्यक्ति जल की औसत खपत मात्र 1000 घन मीटर प्रतिवर्ष थी, जो 1980 से बढ़कर 3600 घन मीटर हो गई।

विकासशील देशों में जल की उपलब्धता में बहुत असमानता है। अफ्रीका के लोसेथो क्षेत्र में केवल 13 प्रतिशत व्यक्तियों को पीने का साफ पानी मिलता है जबकि लीबिया में 96 प्रतिशत जनसंख्या को यह सुविधा मिली हुई है। भारत में 70 फीसदी से अधिक आबादी को पीने का साफ पानी जबकि पैराग्वे में केवल 25 फीसदी को साफ पानी मिल पाता है। विश्व में लगभग 1:6 अरब व्यक्तियों को जो पूरी आबादी का 24 प्रतिशत है पीने का साफ पानी नहीं मिल पाता है। इस प्रकार गंदे पानी के इस्तेमाल से होने वाले रोगों जैसे हैजा, टाइफाइड, दस्त, पेचिश, मलेरिया और आंतों के रोगों से करीब 50 लाख व्यक्ति हर साल मौत का शिकार होते हैं।

विश्व में जल संसाधन

भारत में विश्व के धरातलीय क्षेत्र का लगभग 2.45 प्रतिशत, जल संसाधनों का 4 प्रतिशत तथा जनसंख्या का लगभग 16 प्रतिशत भाग पाया जाता है। देश में एक वर्ष में प्राप्त कुल जल की मात्रा लगभग 4000 घन कि.मी. है। धरातलीय जल और पुनः पूर्तियोग्य भूमिजल 1869 घन कि.मी. जल उपलब्ध है। इसमें से केवल 60 प्रतिशत जल का लाभदायक उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार देश में कुल उपयोगी जल संसाधन 1122 घन कि.मी. है। एक जानकारी के मुताबिक धरती पर 294000000 घन मीटर पानी उपलब्ध है, पृथ्वी पर अधिकतर पानी तरल अवस्था में उपलब्ध है, क्योंकि हमारी धरती सौर–तंत्र की सीध में स्थित है, अतः यहां ताप न तो इतना अधिक होता है कि पानी उबलने लगे न ही इतना कम कि वह बर्फ में बदल जाए। जब पानी जमता है तब विस्तारित होता है जबकि ठोस बर्फ पानी पर तैरती है। जल एक चक्रीय संसाधन है जो पृथ्वी पर प्रचुर मात्रा में पाया है। पृथ्वी का लगभग 71 प्रतिशत धरातल पानी से आच्छादित है परंतु अलवणीय जल कुल जल का केवल लगभग 3 प्रतिशत ही है। वास्तव में अलवणीय जल का एक बहुत छोटा भाग ही मानव उपयोग के लायक है। अलवणीय जल की उपलब्धता स्थान और समय के अनुसार भिन्न–भिन्न है। इस दुर्लभ संसाधन के आवंटन और नियंत्रण पर तनाव और लड़ाई–झगड़े, संप्रदायों, प्रदेशों और राज्यों के बीच विवाद का विषय बनते रहते हैं।

हमारे देश में योजना–पूर्व यानी वर्ष 1951 के दौरान प्रति व्यक्ति वार्षिक उपलब्ध जल संसाधन लगभग 5200 घन मीटर था। वर्ष 1990 के बाद यह बढ़ती आबादी, शहरीकरण, औद्योगीकरण आदि के कारण घटकर मात्र 2200 घन मीटर रह गया जो एक गंभीर स्थिति की ओर संकेत करता है। ग्रामीण एवं शहरी भारत दोनों में ताजे शुद्ध पेयजल का स्रोत भूमिगत जल ही है। यह कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों के लिए भी एक महत्वपूर्ण स्रोत है। पेयजल की सबसे अधिक समस्या गांवों में है। भारत गांवों का देश है और यहां की लगभग 80 प्रतिशत आबादी गांवों में ही रहती है जिनकी जीविकोपार्जन का साधन कृषि है। ग्रामीण

जनता को केवल पीने के लिए ही जल नहीं चाहिए बल्कि सिंचाई के लिए भी जल की जरूरत पड़ती है। गांवों में जल के स्रोत नदी, कुंआ, नलकूप, झरना आदि प्रमुख हैं। गर्मी के दिनों में इन जल स्रोतों की स्थिति दयनीय हो जाती है। इन दिनों जल की बढ़ती मांग के कारण जल स्रोतों के दोहन में वृद्धि हो जाती है जिसके चलते इन स्रोतों से पानी मिलना कठिन हो जाता है। ग्रामीण इलाकों में नलकूपों की संख्या अभी बहुत कम है और जो नलकूप लगे हैं उसमें से अधिकतर खराब ही रहते हैं। गर्मियों में कुओं का पानी सूखने लगता है। अब तो भूमिगत जल के अत्यधिक दोहन के कारण जल स्तर गिरता जा रहा है, इसका असर कुओं तथा अन्य स्रोतों पर पड़ने लगा है। जो जल मिलता है वही भी प्रदूषित होता है। पहाड़ी इलाकों में तो जल कोसों दूरी तय करने के पश्चात् मिलता है।

उत्तर प्रदेश, बिहार और झारखंड में पेयजल की जो स्थिति है, वही अधिकतर प्रदेशों के गांवों की है। उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल और दक्षिण बिहार के गांवों में पानी की समस्या इतनी गंभीर है कि कहीं–कहीं ग्रामीणों को पानी की कीमत भी चुकानी पड़ती है। ग्रामीण अंचलों में स्वच्छ और शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराने के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक विकास योजनाएं प्रारंभ की गई थी। पेयजल को एक भारी चुनौती के रूप में स्वीकार किया गया। वर्ष 1986 में शुरू किए गए 'राष्ट्रीय पेयजल मिशन' ने इस दिशा में वैज्ञानिकों द्वारा बताए गए उपाय को क्रमबद्ध रूप दिया है। वर्ष 1991–92 में 'राष्ट्रीय पेयजल मिशन' को 190 करोड़ रुपए की अतिरिक्त राशि प्रदान की गई ताकि 1992–93 के दौरान बिना पेयजल स्रोत वाले सभी गांवों में पीने का पानी की व्यवस्था की जा सके। बाद में इस मिशन का नाम 'राष्ट्रीय पेयजल मिशन' से बदलकर 'राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन' कर दिया गया।

शहरों में जल पूर्ति और वाहितमल उपचारण

जून 1976 में कनाड़ा के वैंकूवर शहर में हुए मानव के रहन–सहन से संबंधित संयुक्त राष्ट्र के अधिवेशन में कहा गया था कि "सभी देशों के सुरक्षित जल की पूर्ति तथा मल निपटान को उच्च प्राथमिकता देनी चाहिए और 1990 तक यह विश्व की पूरी आबादी तक पहुंच जाना चाहिए।"

सन् 1977 में मार–डेल–प्लाटा अर्जेन्टीना में हुए संयुक्त राष्ट्र जल सम्मेलन में 1 अप्रैल 1981 से 31 मार्च 1991 के दशक को जल पूर्ति तथा स्वच्छता दशक के तौर पर मनाने की बात कही गई जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के 31वें अधिवेशन में मान लिया गया। रियो के पृथ्वी सम्मेलन के दौरान भी वर्ष 2015 तक सबको शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराने की बात कही गई थी। भारत ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया था। समेकित जल पूर्ति हमारे देश में 1870 के दशक में कोलकाता, मुंबई और चेन्नई में शुरू हुई। स्वर्गीय पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने 1980 में *वर्ल्ड हेल्थ* नामक पत्रिका में कही थी कि "जल पूर्ति और स्वच्छता दशक का मुख्य कार्य हमारे 560000 गांवों में स्वच्छ जल की पूर्ति होना चाहिए। जल पूर्ति तो अब देश के एक बड़े भाग में पहुंच रही है, पर इसमें कितना जल स्वच्छ या सुरक्षित है, कहना मुश्किल है।"

गंदे पानी की पूर्ति के कारण कई रोगों के फैलने का खतरा रहता है। देश के एक बड़े भाग में इन रोगों का प्रभाव पड़ा है। भारत में प्रतिवर्ष करीब 15 लाख बच्चे पांच वर्ष से भी कम आयु में मर जाते हैं। पानी में रोटा–विषाणु की उपस्थिति ही बच्चों में डायरिया होने का प्रमुख कारण है। इसके अतिरिक्त अन्य परजीवी जैसे, ई–कोलाई, सोजमोनेला, शाहजेला, वी–कोलाई आदि भी गंदे पानी में पाए जाते हैं, जिनसे अनेक प्रकार के रोग होते हैं।

स्वच्छ जल की पूर्ति में कई बाधाएं हैं। तेजी से बढ़ती जनसंख्या और पानी के स्रोत का उपयोग नहीं

कर पाना प्रमुख समस्याएं हैं। जब भी किसी शहर का पेयजल योजना बनती है, तो उसे पूरा होते–होते वहां की जनसंख्या बढ़ चुकी होती है और पानी की कमी पूर्ववत् बनी रहती है। पैसे की कमी के कारण भी ऐसी परियोजनाएं भी देरी से पूरी होती है।

गांवों में पानी की कमी का कारण बढ़ता शहरीकरण भी है। शहर के बढ़ने के साथ–साथ पानी और ईंधन जैसी सभी आवश्यक वस्तुएं वहीं केंद्रित होने लगती हैं। पहले शहर अपनी पानी की जरूरत आस–पास के किसी स्रोत से पूरी कर लेते थे, पर अब अनेक गांवों की उपेक्षा कर दूर–दूर से शहरों के लिए पानी आता है। बड़े– बड़े शहरों की जल पूर्ति भी अनिश्चित रहती है। शहरों में जितनी जल की पूर्ति की जाती है, उसका लगभग 80 प्रतिशत भाग गंदे जल (वाहित मल) के तौर पर बाहर आता है और नालों के माध्यम से जमीन पर प्रवाहित होता है या नदियों तक पहुंचता है। हमारे देश के जलीय संसाधनों में प्रदूषण का यह सबसे बड़ा कारण है। देश के सभी प्रथम और द्वितीय श्रेणी के शहरों से लगभग 3800 करोड़ लिटर वाहित मल उत्पन्न होता है पर इन शहरों में मात्र 1200 करोड़ लिटर वाहित मल के उपचारण (ट्रीटमेंट) की सुविधा है। उपचारण क्षमता और वास्तविक उपचारण की मात्रा में भी बड़ा अंतर रहता है। अनेक उपचारण संयंत्र रख–रखाव ठीक नहीं होने कारण बंद पड़े रहते हैं।

उपचारण के बाद उत्पन्न वाहित मल की गुणवत्ता के लिए 'केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड' ने मानक बनाए हैं और लगभग 39 प्रतिशत उपचारण संयंत्र चलने के बाद भी वे इन मानकों का पालन नहीं कर पाते हैं। अनेक शहरों में उपचारण संयंत्र तो हैं पर वाहित मल के संग्रहण और परिवहन की व्यवस्था नहीं है इसलिए वाहित मल सीधा नदियों में मिलकर उन्हें प्रदूषित करता है।

देश के सभी 35 महानगरों (10 लाख से अधिक आबादी वाले शहर) से प्रतिदिन 1564 करोड़ लिटर वाहित मल उत्पन्न होता है जबकि इन शहरों में उपचारण की क्षमता मात्र 804 करोड़ लिटर वाहित मल के लिए स्थापित की गई है। इस स्थापित उपचारण क्षमता में से दिल्ली और मुंबई का सम्मिलित तौर पर योगदान 55 प्रतिशत है, शेष 45 प्रतिशत 33 महानगरों में स्थापित है। हैदराबाद, वडोदरा, चेन्नई, लुधियाना और अहमदाबाद में स्थापित उपचारण क्षमता कुल उत्पन्न वाहित मल की मात्रा के बराबर है, यानी इन शहरों में वाहित मल के शत प्रतिशत उपचारित होने की संभावना है। दिल्ली, मुंबई और पूणे में 50 प्रतिशत से अधिक वाहित मल को उपचारित करने की क्षमता है।

प्रथम श्रेणी के शहरों से सम्मिलित तौर पर प्रतिदिन 3556 करोड़ लिटर वाहित मल उत्पन्न होता है जबकि इन शहरों में मात्रा 1155 करोड़ लिटर वाहित मल को उपचारित करने की क्षमता है। द्वितीय श्रेणी के शहरों के लिए यह मात्र क्रमशः 270 करोड़ लिटर प्रतिदिन और 23 करोड़ लिटर प्रतिदिन है।

प्रथम श्रेणी के कुल 36 शहर ऐसे हैं, जो गंगा नदी के ठीक किनारे बसे हैं, इनसे 264 करोड़ लिटर वाहित मल उत्पन्न होता है। इसमें से मात्र 117 करोड़ लिटर वाहित मल उपचारित किया जा सकता है। इसी प्रकार प्रथम श्रेणी के शहर गंगा नदी की सहायक नदियों के किनारे बसे हैं, इनसे 784 करोड़ लिटर वाहित मल उत्पन्न होता है और 367 करोड़ लिटर वाहित मल उपचारित किया जा सकता है। द्वितीय श्रेणी के शहरों के संदर्भ में 14 शहर गंगा नदी के ठीक किनारे बसे हैं जिनसे 12 करोड़ लिटर वाहित मल उत्पन्न होता है, पर मात्र 1.6 करोड़ लिटर वाहित मल ही उपचारित किया जाता है। द्वितीय श्रेणी के 18 शहर गंगा की सहायक नदियों के किनारे स्थापित हैं, जिनसे 13.5 करोड़ लिटर वाहित मल उत्पन्न होता है, जिसमें से मात्र 0. 9 करोड़ लिटर वाहित मल की उपचारित किया जा सकता है।

जल को शुद्ध करने की कुछ विधियां

मानवीय गतिविधियों, शहरीकरण और औद्योगीकरण का जल गुणवत्ता पर सीधा असर पड़ता है। दुनिया भर में जल गुणवत्ता मापन डाटा और अनुवीक्षण (मॉनीटरिंग) की कमी के साथ इस दिशा में जन साधारण के अज्ञान का भी पर्यावरण और जल गुणवत्ता पर असर पड़ता है। जल स्रोतों के संरक्षण के प्रति प्रशासनिक उदासीनता भी इसका कारण है। स्वस्थ वातावरण और बेहतर सेहत के लिए 20 से 40 लिटर शुद्ध जल उपेक्षित होता है। जिन विकासशील देशों में तेजी से शहरीकरण हो रहा है। वहां सीवेज सुविधाएं नहीं है जिसका असर पीने योग्य जल में प्रदूषण के रूप में फैलता है। जल संरक्षण और शोधन की कई तकनीकें हैं। किसी भी विधि में पहला कार्य जल में से मिट्टी के कण, लकड़ियों के टुकड़े, कचरा और जीवाणुओं को हटाना होता है। लिहाजा स्वच्छ जल प्राप्त करने की प्रक्रिया काफी जटिल होती है। पानी को साफ कर पीने योग्य बनाए जाने वाली कुछ विधियों के बारे में जानें।

रासायनिक प्रक्रिया : नदियों का जल उनके किनारे जलकुंडों में एकत्र कर के रखा जाता है ताकि प्राकृतिक जैव–स्वच्छता प्रक्रिया अपना काम कर सके। स्लो सैंड फिल्टर्स के मामले में यह क्रिया विशेष तौर पर इस्तेमाल में लाई जाती है। इसके बाद फिल्टर किए गए पानी से विषाणुओं (वायरस), प्रोटोजोआ और जीवाणुओं को हटाने का काम किया जाता है। हानिकारक जीवाणुओं को हटाने के बाद उनको रसायन या पराबैंगनी किरणों की प्रक्रिया से गुजरा जाता है जिससे जीवाणुओं का सफाया हो जाता है। कृषि आदि के लिए इस्तेमाल में लाए जाने वाले पानी में यह रासायनिक और जैविक क्रिया अक्सर जरूरी होती है।

स्कंदन और ऊर्णन : यह दोनों पारंपरिक विधियां हैं जो रसायनों के साथ काम करती है। ये छोटे कणों को एकत्र करती हैं और वे फिल्टर में रेत या अन्य कणों के साथ जा जुड़ते हैं। इसी तकनीक के नए स्वरूप में पानी को बिना रसायनों के परिष्कृत करने के लिए रासायनिक माइक्रोस्कोपिक छेद वाली पॉलिमर फिल्म का इस्तेमाल किया जाता है जिसे सूक्ष्म या परा–निस्येदन झिल्ली (माइक्रो या अल्ट्रा फिल्टरेशन मैम्ब्रेन) कहते हैं। झिल्ली माध्यम यह निर्धारित करता है कि पानी के बहाव के लिए कितना दबाव जरूरी होगा और किस आकार के सूक्ष्मजीवी इससे निकल सकते हैं।

कार्बन फिल्टरन : घरों में चारकोल से होकर आने वाला पानी इस्तेमाल होता है। चारकोल जो कार्बन का एक रूप है कई विषैले तत्वों को अपने अंदर समाहित कर लेता है। दो तरह के कार्बन फिल्टर होते हैं। पहला, चारकोल जो कई विषाक्त तत्वों जैसे पारा, कार्बनिक रसायन, कीटनाशियों और अन्य तत्वों को हटा पाने में सक्षम ऐसे सभी विषाक्त तत्व को हटाने में कारगर होता है।

आसवन (डिस्टीलेशन) : आसवन में जल को उबालकर उसकी वाष्प प्राप्त किया जाता है। चूंकि पानी में प्राप्त तत्व आम तौर पर वाष्पित नहीं होते हैं। लिहाजा वह उबलते हुए पानी में ही रहते हैं। आसवन से पानी पूरी तरह स्वच्छ नहीं होता है क्योंकि क्वथनांक (ब्वायलिंग प्वाइंट) पर भी कई प्रदूषित तत्व जीवित रहते हैं और भाप के साथ बची रह गई अवाष्पित बूंदों के कारण आसवन से 99.9 प्रतिशत स्वच्छ जल प्राप्त हो सकता है।

जल बचत विधियां

रोजमर्रा के जीवन में हम कुछ बुनियादी और किफायती तरीके अपनाकर पानी की बचत कर सकते हैं। बस इसके लिए हमें कुछ ऐसे कार्यों पर ध्यान देना होगा जिनसे पानी इस्तेमाल होता है और व्यर्थ भी जाता है क्योंकि ऐसे अक्सर कार्य हम करते तो रोज हैं पर उस ओर ध्यान नहीं जाता है। यह तरीके बेहद मामूली है और इन्हें अपनाने के लिए जरूरी है केवल इच्छा शक्ति की। तो आइए, जानें ऐसे ही कुछ उपयों को–

- आवश्यकता के अनुसार ही जल का उपयोग करें।
- इस्तेमाल के बाद पानी के नलों को बंद रखें। मंजन करते समय नल को बंद रखें तथा आवश्यकता होने पर ही खोलें।
- नहाने के लिए अधिक जल बरबाद न करें। संभव हो तो फव्वारे के स्थान पर बाल्टी और टब आदि में पानी भरकर इस्तेमाल करें।
- ऐसी वाशिंग मशीन का इस्तेमाल करें जिससे अधिक जल की खपत न होती हो।
- खाद्य सामग्री तथा कपड़ों को धोते समय नलों को खुला न छोड़े।
- जल को नाली में बिल्कुल न बहाएं बल्कि इसे अन्य उपयोगों जैसे– पौधों अथवा बगीचे को सींचने अथवा सफाई इत्यादि में लाएं।
- सब्जियों तथा फलों को धोने में प्रयुक्त जल का उपयोग फूलों तथा सजावटी पौधों के गमलों को सींचने में किया जा सकता है।
- पानी की बोतल के आखिर में बचे हुए जल को फैकें नहीं बल्कि इसका पौधों को सींचने में उपयोग करें।
- पानी के हौज को खुला न छोड़ो।
- तालाबों, नदियों अथवा समुद्र में कूड़ा न फैंके।
- स्वास्थ्य की दृष्टि से जरूरी है कि घर के कूलर और गमलों आदि में पानी न जमा होने दें। इसे उनमें मच्छर नहीं पलेंगे।
- जिस फिल्टर में आप पानी पीने के लिए साफ करते हैं उसे नियमित तौर पर साफ करते रहें। यदि विद्युत फिल्टर है तो उसे कंपनी द्वारा बताए गए तरीके से ही साफ रखें और ध्यान दें कि वह पानी अनावश्यक रूप से बहता न रहें।
- घर के साथ–साथ सार्वजनिक नलों आदि पर भी ध्यान दें। यदि वे बह रहे हैं तो यह न केवल सामूहिक बल्कि निजी नुकसान की भी श्रेणी में आता है।

वर्षा जल संग्रहण

वर्षा जल–संग्रहण विभिन्न उपयोगों के लिए वर्षा जल रोकने और एकत्र करने की विधि है। इसका उपयोग भूजल आपूर्ति के लिए भी किया जाता है। यह कम मूल्य की और पारिस्थितिक अनुकूल विधि है जिसके द्वारा पानी की प्रत्येक बूंद संरक्षित करने के लिए वर्षा जल को नलकूपों, गड्ढों और कुओं में एकत्र किया जाता है।

- पहले गांवों, कस्बों और नगरों की सीमा पर कहीं नीची सतह पर तालाब अवश्य होते थे, जिनमें स्वाभाविक रूम में मानसून की वर्षा जल एकत्रित हो जाता था। साथ ही अनुपयोगी जल भी तालाब में जाता था, जिसकी सफाई मछलियां और मेंढक आदि करते रहते थे और जल पूरे गांव के और पशुओं आदि के काम में आता था। जरूरी है कि गांवों कस्बों और नगरों में छोटे–बड़े तालाब बनाकर वर्षा जल का सरंक्षण किया जाए।
- टॉयलेट में लगी फ्लश की टंकी में प्लास्टिककी बोतल रेत भरकर रखने में हर बार एक लिटर जल बचाने का कारगर उपाय उत्तराखंड जल संस्थान ने बताया है। इस विधि से जल बचाया जा सकता है।
- आज समुद्र के खारे जल को पीने योग्य बनाया जा रहा है, गुजरात के द्वारिका आदि नगरों में प्रत्येक घर में पेयजल के साथ–साथ घरेलू कार्यों के लिए खारे जल का प्रयोग करके शुद्ध जल संरक्षण किया जा रहा है।
- घर की छत पर वर्षा जल एकत्र करने के लिए एक या दो टंकी बनाकर उन्हें मजबूत जाली या फिल्टर कपड़े से ढका जाए तो जल संरक्षण किया जा सकेगा।
- बड़ी नदियों की नियमित सफाई बेहद जरूरी है। बड़ी नदियों के जल का शोधन करके

उसका उपयोग पेयजल के रूप में किया जा सकता है।

- नगरों और महानगरों में घरों की नालियों के पानी को गड्ढ़े बनाकर एकत्र किया जा सकता है।
- जंगल कटने पर वाष्पीकरण न होने से एक तो वर्षा नहीं हो पाती और दूसरे, भूजल सूखता जाता है। इसलिए वृक्षारोपण जल–सरंक्षण में बेहद जरूरी भूमिका निभाता है।

जल–सरंक्षण की पहल

- जल की गुणवत्ता सुधारने के लिए आप भी पहल कर सकते है। लोगों को जल की गुणवत्ता और सेहत के बीच संबंध पर जागरूक कर सकते हैं।
- शहरी क्षेत्रों में ज्यादातर हिस्सों में फर्श होने से पानी जमीन के अंदर न जाकर किसी जलस्रोत की तरफ बह जाता है। रास्ते में यह अपने साथ हमारे द्वारा बिखरे खतरनाक रसायनों, तेल, ग्रीज, कीटिनाशियों एवं उर्वरकों जैसे कई प्रदूषक तत्वों को ले जाकर पूरे जलस्रोत को प्रदूषित कर देता है। इसलिए इन रसायनों से जलस्रोतों को बचाने के लिए पक्के फर्श के विकल्पों का चुनाव करें। संभव हो तो छिद्रित फर्श बनाए जा सकते हैं। स्थानीय पौधे भी लगाए जा सकते हैं।
- खेती के लिए भूमि–कटाव नियंत्रण और पोषक तत्व प्रबंधन योजनाओं वाली तकनीक का उपयोग करें।
- विषैले रसायनों का प्रयोग कम से कम करें।
- हर दिन दुनिया भर के पानी में 20 लाख टन (वाहित मल), औद्योगिक और कृषि कचरा डाला जाता है।
- पांच साल से कम उम्र के बच्चों की मौत का सबसे बड़ा कारण है– जलजनित बीमारियां।
- भूजल पर आश्रित दुनिया में 24 फीसदी स्तनधारियों और 12 फीसदी पक्षी जातियों की विलुप्ति का खतरा है, जबकि एक तिहाई उभयचरों पर भी तलवार लटकी है।
- 70 देशों के 14 करोड़ लोग आर्सेनिक युक्त पानी पीने को विवश है।
- पेयजल और इसकी साफ–सफाई पर किए जाने वाले निवेश की प्रति लाभ (रिटर्न) दर काफी ऊंची है। हर एक रुपए निवेश पर 3 रुपए से 34 रुपए आर्थिक विकास प्रति लाभ का अनुमान लगाया जाता है।
- पानी और साफ–सफाई के अभाव में अफ्रीका को होने वाला आर्थिक नुकसान 28.5 अरब डालर या सकल घरेलू उत्पाद का पांच फीसदी है।

जल–संरक्षण हेतु उचित प्रबंधन की आवश्यकता

विकास के तमाम लंबे–चौडे दावों के बावजूद भारत के एक लाख गांवों में आज भी पेयजल का गंभीर संकट है। दो लाख से ऊपर ऐसे गांव है जहां के निवासियों को पानी के लिए दो किलोमीटर से अधिक की दूरी तय करनी पड़ती है। राजस्थान एवं पहाड़ी क्षेत्रों के गांव ऐसे हैं जहां बरसात के दिनों को छोड़कर बाकी मौसमों में पानी की बराबर कमी रहती है। ग्रामीण जल पूर्ति कार्यक्रम में प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति को 40 लिटर स्वच्छ पानी और रेगिस्तानी क्षेत्रों में मवेशियों के लिए 30 लिटर अतिरिक्त जल उपलबध होना चाहिए। इस प्रकार भारत में घरेलू उपयोग और पालतू पशुओं के लिए करीब 25 अरब घनमीटर पानी की जरूरत हर रोज पड़ती है। आजकल तो बड़े शहरों में भी पानी का संकट काफी गहरा होता जा रहा है। हर सुबह पानी के लिए त्राहि–त्राहि मची रहती है। गर्मियों में यह समस्या और भी चरम पर पहुंच जा रहा है। जलस्रोत सूखने लगते हैं। भारत में कुल उपलब्ध पानी का लगगभ 70 प्रतिशत अस्वच्छ पानी है। भारत ही नहीं

बल्कि तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में पेयजल के नाम पर प्रदूषित पानी की ही ज्यादातर खपत हो रही है।"

जल–प्रबंधन की जरूरत

पानी के कुप्रबंधन की समस्या से अगर भारत जल्द न निपटा तो भविष्य में स्थितियां और भयावह होती जाएगी। पानी के प्रबंधन में भारत की जनसंख्या और गरीबी बड़ी चुनौतियां हैं। पानी को लेकर विभिन्न राज्य सरकारों के बीच विवाद इस समस्या को और गहरा सकता है। सरकार को निश्चित ही इस दिशा में गंभीरतापूर्वक कदम उठाने होंगे। प्रदूषित पेयजल से जनता को बचाने के लिए कारगर प्रयास करने की जरूरत है। लोगों में स्वच्छ पेयजल के लिए सरकार द्वारा जितने कार्यक्रम चलाएं जा रहे हैं उनकी समीक्षा भी आवश्यक है। यह केवल सरकारी प्रयास से ही संभव नहीं बल्कि इसके लिए सामाजिक एवं औद्योगिक संगठनों को भी आगे आना होगा। पेयजल कार्यक्रम के लिए आवंटित धन राशि के उचित उपयोग को सुनिश्चित करना चाहिए इसके लिए जनता को भी सजग और सतर्क रहना होगा और अपने हक के लिए उन्हें लड़ना भी होगा।

हकीकत में पानी की बचत के लिए एक ओर स्वस्थ जन–चेतना की जरूरत है और दूसरी तरफ उपयुक्त प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी) के उपयोग की। आज से पांच हजार साल पहले पानी की कमी नहीं थी लेकिन पानी के महत्व को तब भी पहचाना गया था और हमेशा इसके सही उपयोग की बात ही बताई गई थी। मानव जीवन के विकास में जल का स्थान हमेशा सर्वोपरि रहा है। संसार की प्राचीनतम सभ्यताएं नदी घाटियों के समीप ही पनपी है। तब चाहे वह सिंधु नदी हो, मिस्र की नील रही हो या चीन की हवांग–हो रही हो। अब धीरे–धीरे पानी का संकट और उग्र होता जा रहा है। इसलिए यदि जीवन बचाना है तो जल को बचाने की बात भी अभी से सोचनी होगी तथा जल–संरक्षण हेतु उचित प्रबंधन की तकनीकों को लागू करके जीवन को सुरक्षित रखने हेतु जल–संरक्षण तकनीकों को धरातल पर लाना होगा जिससे आम लोगों की भागीदारी से जल–संरक्षण हो सके।

5

प्रथम मानव–रहित संयोजी वायुरहित वाहन में प्रयुक्त प्रौद्योगिकी

घनश्याम तिवारी एवं
डी. वी. एस. सेठी

इस लेख में मानवरहित संयोधी (कॉम्बैट) वायुवाहित वाहनों (यू.सी.ए.वी.) के विकास का संक्षिप्त इतिहास, अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रमों में विकास की दिशाएं, लक्ष्यों का वर्णन, प्रयुक्त प्रौद्योगिकियों की विवेचना एवं मानव–सहित प्रणालियों की तुलना में इसके संक्रियात्मक पहलुओं का मूल्यांकन किया गया है। मानवरहित वाहनों जैसे कि उपग्रहों, गुब्बारों एवं बिना विद्युत् शक्ति (पावर) के विमानों का वर्णन नहीं किया गया है।

परिभाषा

चित्र 1 में मानवरहित वायुवाहित वाहन (यू.ए.वी.) जो कि स्वपोषित, नियंत्रणीय और मानवरहित, और पुनः प्राप्य है, का श्रेणीकरण दर्शाया गया है। ये दूरस्थ नियंत्रित अथवा स्वचालित अथवा दोनों ही हो सकते हैं। इस लेख में यह दिखाया गया है कि हथियार से लैस मानवरहित वायुवाहित वाहन हथियार जिसका उपयोग आसूचना, निगरानी और टोही प्रयोजन में किया जाता है और मानवरहित संयोधी वायुवाहित वाहन जिसका प्रमुख इष्टतम् प्रयोग संयोधी भूमिकाओं में किए जाते हैं। उनमें और संयोधी में क्या अंतर होता है?

प्रथम विश्वयुद्ध

6 अप्रैल 1917 को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने सरकारी तौर पर प्रथम विश्वयुद्ध की शुरूआत की। उसके आठ दिन के उपरांत 2,50,000 पाउंड इलैमर स्पेटेरी (जिन्होंने जाइरो स्थिरीकरण परियोजना विकसित की थी, जिससे स्वचालित (ऑटो पायलट) का 1995 में विकास संभव हुआ था) को फ्लाइंग बम परियोजना के विकास हेतु आबंटित किए गए थे। उन्होंने एन–9 सीप्लेन और प्रणाली का अपने जाइरोस्कोप के कार्य के आधार पर विकसित नियंत्रण प्रणाली का विकास फ्लाइंग बम परियोजना हेतु किया गया था। फ्लाइंग बम को 75 मील की दूरी तक 100 पाउंड के बम को लगभग डेढ़ मील की परिशुद्धता के साथ ढोना था। इन कार्यक्रमों की सफलता छिट–पुट ही रही।

जब अमेरिका की थल सेना सिग्नल कॉर्पस ने राइट बंधुओं को थल सेना के लिए प्रथम मानवयुक्त वायुयान का ठेका प्रदान किया, उसके 9 वर्ष के उपरांत जनरल मोटर्स के चार्ल्स एफ केटरिंग को थल सेना के प्रथम मानवरहित वायुयान का ठेका दिया गया। थल सेना ने 25 जनवरी 1918 के 25 केटरिंग बम के विकास हेतु आदेश दिए। बम 180 पाउंड का विस्फोटक उठा सकता था और 55 मील प्रति घंटे की दर से लगभग 50 मील की दूरी तय कर सकता था। पहले से ही सेट नियंत्रणों द्वारा इन्हें लक्ष्य की ओर निर्देशित किया जाता था और इनमें अवभारणीय पंख थे। दुर्भाग्यवश बग अपने परीक्षणों में असफल रहा और 36 परीक्षण उड़ानों में से केवल 8 सफल उड़ानें भर सका।

जो समस्याएं सामने आई, वे इस प्रकार थी–

1. मानवरहित वायुयान को वायु में प्रमोचित करने की समस्या

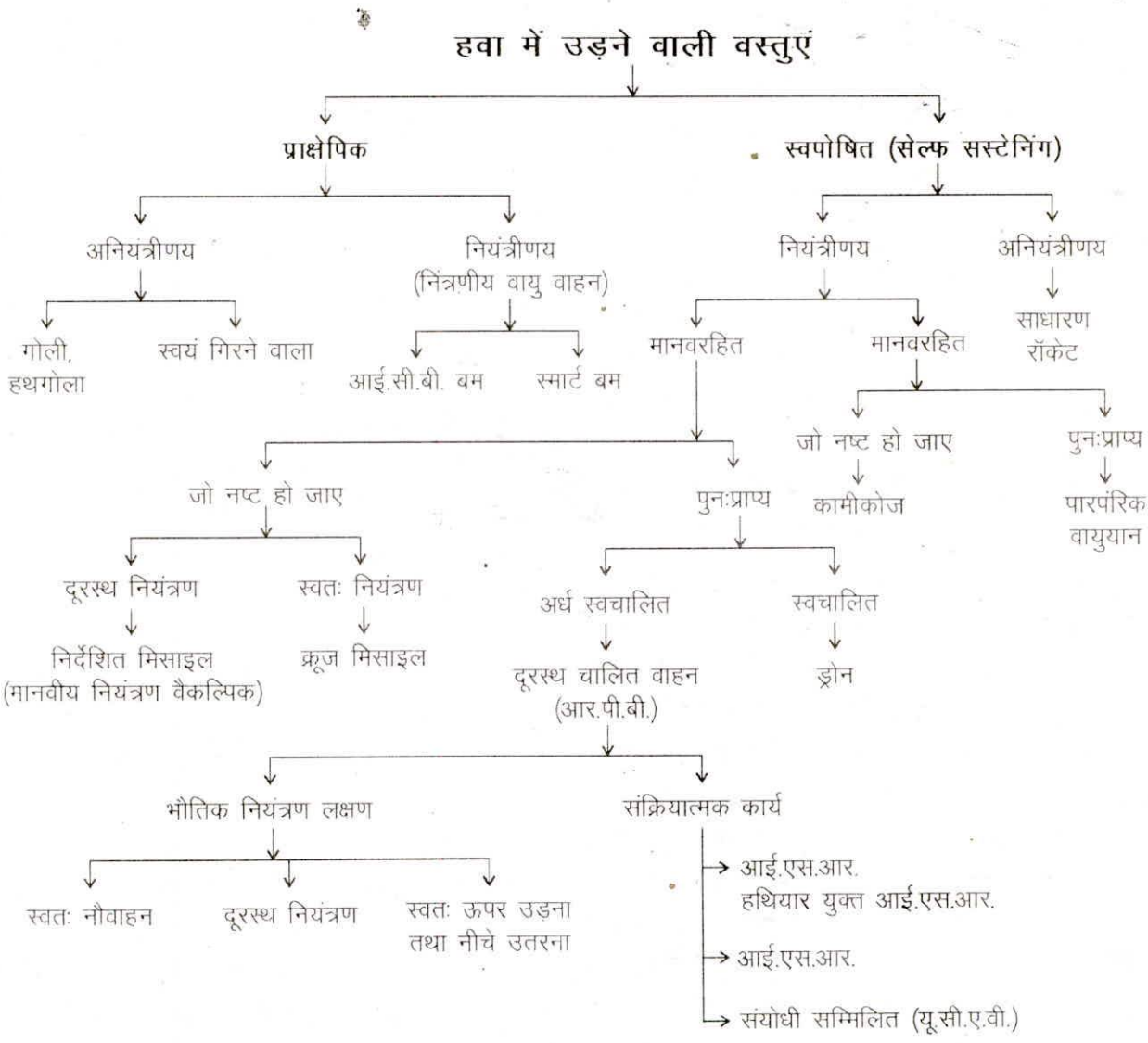

चित्र 1 वायुवाहित वाहनों का मानचित्रण

2. उत्पादनकर्ताओं के लिए ऐसे वायुयान का निर्माण करने का समय जो बिना चालक के ठीक प्रकार से हवा में उड़ सके। वायुगतिकी का सीमित ज्ञान, अनुप्रयुक्त परीक्षण और मशीनों के जल्दबाजी में निर्माण से उत्पन्न मूलभूत वायुगतिकी समस्याओं (जो इन प्रारंभिक मानवरहित उड़ने वाली मशीनों में थी) का सामना करना पड़ा।

3. घटकों के निर्माण में जैसे कि मार्गदर्शी प्रणालियां और इंजन में जो समस्याएं आईं, वे कार्यक्रम के विकास में बाधा बनीं।

4. मशीनें बहुत नाजुक थी और एक दिन के मिशन के लिए निर्मित की गई थी। परिणामस्वरूप, उन्हें दुर्घटना के उपरांत नष्ट कर दिया जाता था और इससे परीक्षण के लिए प्राप्त आपूर्ति कम हो जाती थी।

अमेरिकी सेना ने प्रथम विश्व युद्ध में प्रक्षेपास्त्रों पर फ्लाइंग बम अथवा वायवीय (एरियल) टॉरपीडों के विचार से अनुसंधान प्रारंभ किया। गाइरोस्कोप द्वारा नियंत्रित बम जो कि आर्मी सिगनल कोर के लिए चार्ल्स केटरिंग और एलमर तथा लारेंस स्पेरी द्वारा विकसित क्रमशः थल सेना और नौ सेना के लिए स्टैंड ऑफ हथियार थे, जो जर्मन यू–बोट सुविधाएं की तरह लक्ष्य पर 100 मीटर तक प्रहार करते थे। अमेरिका में 1921 से 1925 तक मानवरहित विमान गनरी लक्ष्यों के रूप में प्रयोग किए जाते थे एवं बाद में वित्तीय विवशताओं के कारण इन कार्यक्रमों को रोक दिया गया। थल सेना और नौ सेना ने कुछ वर्षों के बाद इसमें रुचि लेनी बंद कर दी, उसी प्रकार से जिस प्रकार उसने एक दशक पूर्व स्वचालित कार्यक्रमों में रुचि छोड़ दी थी।

फ्रांस में एक आर्टिलरी अफसर ऐसे लोरिन्न ने प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व फ्लाइंग बम की संकल्पना का समर्थन किया था। उनके द्वारा प्रस्तावित फ्लाइंग बम को रैम–जेट अथवा पल्स–जेट से शक्ति प्राप्त करनी थी। एक गाइरोस्कोप तथा बैरोमीटर द्वारा स्थायित्व प्रदान करना था। दूसरे मानवयुक्त वायुयान से रेडियो सिग्नल प्राप्त करने थे। वे इसे कभी भी नहीं बना सके परंतु इसकी संकल्पना जर्मनी के वी–1 फ्लाइंग बम की तरह थी, जिनका प्रयोग द्वितीय विश्व युद्ध में किया गया था। अक्तूबर 1915 में जर्मनी ने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ग्लाइल बम के व्यावहारिक उपयोग किया था। ये ग्लाइल बम विस्फोटकों को ढोते थे।

यूनाइटेड किंगडम में तीन संगठनों (सोपविद, डे हैविलैंड और फार्नबौरो) में रॉयल एयरक्रम फैक्री ने एक नए हल्के भार के आदिप्रारूप पातररहित वायुयान बनाएं। रॉयल एयरक्रॉफ्ट फैक्टरी ने तीन मशीनों का परीक्षण किया। इन परीक्षणों में वायुयान को एक ढ़लान तक प्रमोचित किया गया परंतु सभी के अनियंत्रित होने के कारण वे दुर्घटनाग्रस्त हो गए। प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत ब्रिटेन की सरकार की रुचि दूरस्थ चालित वायुयानों में कम हो गई और इस परियोजना का वित्त पोषण समाप्त कर दिया गया।

सन् 1930 के दशक में रेडियो द्वारा नियंत्रित वायुयान पुनः उभरकर 'टारजेट ड्रोन' के रूप में आया और इस प्रकार मानवरहित वायुवाहित वाहनों ने पहली बार अमेरिका की सेना में अपने पैर जमा लिए। सन् 1938 में संयुक्त राज्य अमेरिका की नौ सेना ने मानवरहित वायुवाहित वाहनों का प्रयोग शुरू किया जिसमें 'एन–2सी ड्रोन' वायुयान–प्रतिरोधी गनरी अभ्यासों हेतु सम्मिलित थे। सन् 1936 में संयुक्त राज्य अमेरिका की नौ सेना ने डॉग परियोजना प्रारंभ की। परियोजना में एक सीट वाले वायुयान को मानवरहित वायुरहित वायुयान में (फिलाडलफिया स्थित नौ सेना की वायुयान फैक्टरी में) परिवर्तित किया। नौ सेना के प्रथम रेडियो–नियंत्रित, बिना पायलट के वायुयान एन–2 सी–2 ने नवंबर में प्रथम उड़ान भरी। एक वर्ष से कम के अंतराल में परियोजना 'डॉग' प्रथम आक्रमणकारी ड्रोन के टकराने पर अनियंत्रित हुआ जब एक पायलट–रहित एन–2 सी–2 डाइव–बॉम्बर ने यू.एस.एस. उड़ाकर परीक्षण एक्सरसाइज पर प्रहार किया। यह परीक्षण असफल रहा क्योंकि एक समीप के पानी के जहाज से भटके हुए वायुयान प्रतिरोधी वाइन्ड ने वायुयान पर प्रहार किया और वह लक्ष्य से पहले ही दुर्घटनाग्रस्त हो गया, परंतु इस कार्यक्रम से नौसेना को आक्रमण ड्रोन के विकास एवं वित्तपोषण में काफी संभावनाएं नजर आई। अप्रैल 1941 में नौसेना ने दूरस्थ पाइलर करटिस टीजी–2 का प्रथम सफलतापूर्वक आक्रमण किया। इस मानवरहित संयोधी वायुहीन यान में एक डम्मी टॉरपीडो थी और इसका उद्देश्य युक्तिचालित विध्वंसक यान से टकराना था। इसने एक मातृ वायुयान से नियंत्रित, टीजी–2 में अपनी टॉरपीडो गिरा दी और विध्वंसक के लक्ष्य पर सीधे निशाना बनाया। इसके फलस्वरूप एवं अन्य सफल परीक्षणों द्वारा नौसेना ने द्वितीय विश्व युद्ध की तैयारियों हेतु 500 विध्वसंक ड्रोन और 170 मातृ वायुयान बनाने हेतु आदेश दिए। यूनाइटेड किंगडम ने सन् 1920 से 1943 तक मानवरहित लक्ष्य वायुयान कार्यक्रमों को चलाया। सन् 1934 से 1943 तक गनरी ड्रोन का ब्रिटिश मॉडल, जिसका नाम क्वीन बी था की उत्पादन की संख्या 420 थी।

सन् 1948 के संयुक्त राज्य अमेरिका के अनुबंध द्वारा प्रथम जेट प्रमोचित और सबसे अधिक प्रयोग में लाए जाने वाले लक्ष्य ड्रोन का नाम 'टेलीडाइन–रयान फायर बी' था जिसे चित्र 4 में दर्शाया गया है। एक्स–2 प्ररूप की प्रथम उड़ान वर्ष 1951 में हुई थी। इसमें घुमावदार उड़ान सतहें और गोलाकार नाक का प्रवेश–द्वार (इनलेट) थी। फायर बी को वायु में तथा भू–तल पर एकल रॉकेट के द्वारा सहायता प्राप्त टेकऑफ (राटोबूस्टर) द्वारा प्रमोचित किया जा सकता था।

वियतनाम युद्ध में कई प्रकार के उच्च गति वाले फायर बी ने 3400 उड़ाने भरी, जिसमें 211 ही निष्फल रहीं। यद्यपि वर्तमान प्रीडेटर के मुकाबले में वायुयान आदिम थे, तथापि सूचना इकट्ठा करना, टोही और पहचान करना आदि कार्यों के लिए इनका बहुत व्यापक स्तर पर उपयोग होता था।

मानवरहित संयोधी वायुवाहित यान (यू.सी.ए.वी.) का विकास

1. एफ.सी.ए.वी. – भविष्य का संयोजी वायुवाहित यान
2. एल.आर.एस.ए. – दीर्घ परास का प्रहार वायुयान
3. यू.सी.ए.वी.एन – मानरहित वायुयान (नौसेना)
4. यू.सी.ए.आर. – मानवरहित संयोजी घूमने वाला वायुयान
5. एफ.सी.एस. – भविष्य की संयोजी प्रणालियां

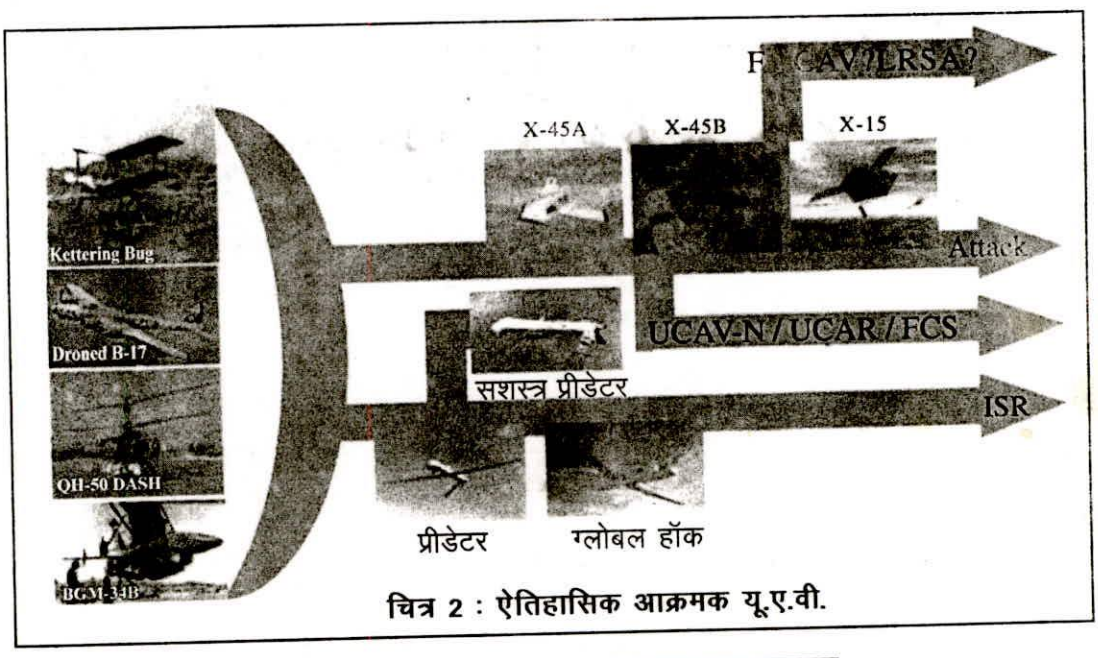

चित्र 2 : ऐतिहासिक आक्रमक यू.ए.वी.

चित्र 3 : केटरिंग बग

6. आई.एस.आर. – सूचना एकत्र करना, टोही एवं पहचान करना।

बीक्यूम–34 फायर बी का इतिहास

1949	एक्सक्यू–2 क्य–2ए केडीए–1, केडीए–4
1958	क्यू–2सी → बीक्यूएम–34ए
1971	ए/ए37जी–8ए एनालोग उड़ान नियंत्रण प्रणाली
1976	आईसीटीसीएस/डीटीसीए बीक्यूएम–34एस डेजिगनेशन नौसेना
1979	जे85–7 इंजिन/ 3–एक्सिस उड़ान नियंत्रण
1989	85–100 और आंकिक उड़ान नियंत्रण
1999	आनुपातिक उड़ान नियंत्रण और जीपीएस/ आईएनएस एकीकरण

चित्र 4 : फायर बी मॉडल

घूर्णी हथियार प्रणाली क्यू.एच–50 डैश

संयुक्त राज्य अमेरिका की नौसेना ने समाक्ष (को–ऐक्सियल) हेलिकॉप्टर का विकास क्यू.एच.–50 डैश हथियार प्रणाली का टारपीडो की सुपुर्दगी के लिए (ड्रोन–पनडुब्बी–प्रतिरोधी हेलिकॉप्टर) प्रारंभ किया। इस प्रणाली का निर्माण एवं प्रबंधन 'गाइरोडाइन कंपनी' द्वारा किया गया। इसमें टारपीडो की सुपुर्दगी की क्षमता थी। नौसेना ने डैश का प्रापण सितंबर 1969 में रद्द कर दिया था, तथापि यह नौसेना में 1995 तक उड़ान भरता रहा था और इसे चाइना लेक नेवल एविएशन हथियार केंद्र कैलिफोर्निया में परिचालित किया जाता था। संयुक्त राज्य अमेरिका की थल सेना को डैश ड्रोनर की आवश्यकता हुई।

चित्र 5 : घूर्णी हथियार प्रणाली क्यूएस–50 डैश

मानवरहित वायुरहित यान द्वारा हथियार की सुपुर्दगी तथा आक्रमण

1971 में संयुक्त राज्य अमेरिका की वायु सेना ने वायुरहित यान द्वारा बम गिराने की परियोजना एक संविदा 'हैव लेमन' के द्वारा प्रारंभ की। इसका उद्देश्य एक ऐसी प्रणाली का अध्ययन था जिसका कार्य शत्रु की वायु रक्षाओं का दमन करना था अथवा दूसरे शब्दों में शत्रु के प्रतिरोधी वायुयान, तोपों और थल से वायु की मिसाइलों को नष्ट करना था। चित्र 6 में एक फायर बी दिखाया गया है जिसके प्रत्येक विंग 42 हथियार पाइलन रखा हुआ है। इसमें एक अग्र भाग देखने वाला टेलिविजन कैमरा है एवं एक डेटा लिंक पॉड अनुलंब प्लेन पर आरोहित किया गया है। दोनों हथियारों के पास प्रतिबिंबन सीकर थे जिससे दूरस्थ नियंत्रण, पाइलर हथियार को निशाना बना सकता था। एक प्रक्षेपास्त्र, मेवरिक का प्रथम प्रक्षेपण एक मानवरहित वायुयान से

14 सितंबर 1971 को किया था। एक फायर बी, जिसमें कि प्रहार रेडार प्रतिरोधी मिसाइलें भी थी, का भी इसके द्वारा प्रयोग किया गया था।

"HAVE LEMON" STRIKE FIREBEE (GVG / PD)

चित्र 6 : फायर बी हथियार भरा हुआ

टेलिडाइन रयान ने सफल बीएफएम–34 फायर बी को एक प्रणाली एमएएसटीएसीएस (टेक्नीकल वायु आक्रमण अनुरूपण के लिए युक्ति–चालित संबंधित प्रणाली) द्वारा डब किया जिससे कि बीजीएम–34 एक युद्धक मानवरहित वायुवाहित यान बनाया जा सके। इस मानवरहित वायुवाहित यान का रडार क्रॉस सेक्शन (आर.सी.एस.) कम था। इसे देखते हुए इसे युद्ध के लिए युक्तिचालित करना काफी कठिन था चूँकि इसका आकार छोटा था। यह 25,000 फीट पर 6–जी टर्न को बर्दाश्त कर सकता था और 1–5 मैक की गति तक पहुंच सकता था। संयुक्त राज्य अमेरिका की नौसेना एवं वायुसेना ने इस मानवरहित वायुवाहित वाहन का उपयोग अपने सर्वोत्तम पाइलटों द्वारा अनुरूपित वायु आक्रमण में प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए किया।

इस मानवरहित वायुवाहित यान ने नेमी तौर पर एफ–15 एवं एफ–16 मानवयुक्त वायुयान की युक्तियों को निरस्त कर दिया। यह एक युक्ति 82 बड़ी–बड़ी मुठभेड़ों (डॉग फाइट्स) से बच निकली थी। संयुक्त राज्य अमेरिका की नौसेना ने एम.ए.एस.टी.ए.सी.एस. का एक ग्रेजुएशन एक्सरसाइज के रूप टॉयगन वेयनस स्कूल में प्रयोग किया। एफ–4 फैंटम 20 वायुयान के जोड़े ने मानवरहित यान को विध्वंस किया। यह उनके पीछे 12 सेकेंड से कम समय में पीछे पड़ जाता था। अगर मानवरहित वायुवाहित यान वायु–से–वायु हथियारों से लैस होता तो वह उस स्थिति में होता कि मानवयुक्त लड़ाकू विमानों को विध्वंस कर देता। परंतु रेडियो लाइन ऑफ साइट, कम्प्यूटर क्षमता, संवेदनशील उड़ान नियंत्रणों की सीमाएं विद्यमान थी। डान के रास्ते के परिवर्तन होने पर वाहन को स्थिर करने में 15 सेकेंड लगता था। यद्यपि मानवयुक्त वायुवाहित यान किसी भी आक्रामक स्थिति से किसी कुशल ऑरपेटर के नियंत्रण में युक्तिपूर्वक निपट सकता था, तथापि वायु–से–वायु हथियारों के समेकित उपयोग की चुनौतियां बहुत अधिक थीं।

परिणाम आगे के विकास के लिए अच्छे थे जिसके फलस्वरूप बीजीएम–34बी बना जिसे लाइटिंग बग कहा जाता था जिसकी विशेषता एक आगे बढ़ी हुई नोज थी जो कि अवरक्त (इन्फ्रा–रेड) प्रतिबिंबन प्रणाली अथवा न्यून–प्रकाश–स्तर टेलीविजन अथवा दोनों का समावेश कर सकती थी। इनका प्रयोग लेजर निर्देशित बमों को लक्ष्य बनाने और नियंत्रण के लिए किया गया।

सन् 1973 और 1974 में बीजीएम–34बी के जो परीक्षण किए गए थे, वे सफल रहे जिससे कि विद्यमान वायुफ्रेमों के परिवर्तन हेतु बीजीएम–34सी का निर्माण हुआ। बीजीएम–34सी का प्रयोग टोही अथवा प्रहार मिशनों अथवा नोज माड्यूलों को निकालने हेतु किया गया। किंतु कुछ अस्पष्ट कारणों से 'हैव लेमान परियोजना' खत्म हो गई। परीक्षण स्कवाड्रनों को सन् 1979 में विघटित कर दिया और लगभग 60 मानवरहित वायुवाहित यानों को भंडारण में डाल दिया गया।

चित्र 7 में रयान बीजीएम–34ए दिखाया गया है जिसमें वह उन हथियारों से लैस है जिन्हें वह लेकर चलती है। इसमें मेवरिक तथा स्टब्बी होबो प्रक्षेपास्त्र तथा मार्क 81 और 82 लोहे के बम दर्शाए गए हैं। एक बीजीएम–34बी पृष्ठभूमि में चित्रित की गई है।

बीजीएम–34ए का उत्पादन सन् 1982 में समाप्त हो गया, परंतु बीक्यूएसम–34एस लक्ष्यों हेतु उत्पादन पुनः सन् 1986 में प्रारंभ किया गया। वायुसेना और नौसेना की फायर बी को अपग्रेड किया गया, जिसमें अधिकतम

पुनः फिटिंग (सन् 1986) में बेहतर जे85–जीई– 100 इंजन में जिसकी 10.9 किलो न्यूटन (11,10 किलो/ 2,450 पाउंड) प्रतिबल था और बेहतर उड्डायनिकी (एवियॉनिकी) थी। कुछ फायर बी की पुनः फिटिंग ग्लोबल पोजीशनिंग प्रणाली, नौवाहन उपग्रह प्राछी के साथ की गई। फायर बी अब भी सेना में हैं और उनका टोही मिशनों के लिए विन्यास किया गया है। सन् 1990 के अंत में, टेलीडाइन–रयान ने कंपनी निधि का प्रयोग करके दो फायर बी को कैमरा और संचार इलेक्ट्रॉनिकी सहित विकसित किया जो कि वास्तविक–काल में सूचना युद्ध क्षेत्र में लक्ष्य के प्रापण और क्षति का मूल्यांकन कर सकें। इन दो मानवरहित वायुवाहित यानों (जिनका नाम 'आगरस' रखा गया था) का

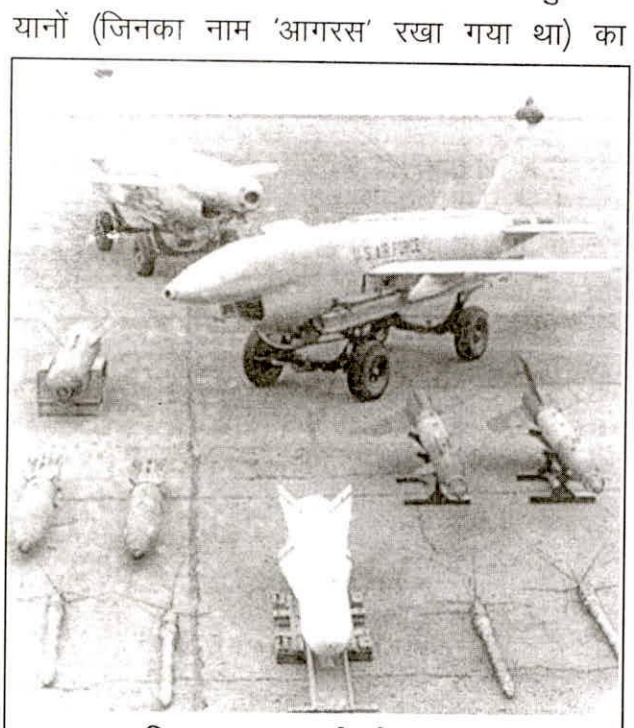

चित्र 7 : रयान बी.जी.एम–3ए

उपयोग अमेरिका की वायुसेना के 'ग्रीन फ्लैग' अभ्यासों में नेवाडा की परीक्षण रेंज से फ्लोरिडा स्थित संयुक्त राज्य अमेरिका के वायुसेना के अफसरों को वास्तविक काल में प्रतिबिंब न के लिए उपयोग किया गया। पाँच बीक्यूएम 34–53 बढ़ाई गई परास फायर बी का उपयोग वसंत 2003 के दौरान जब इराक में अमेरिका को हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ी तो चैफ का गलियारा डालने हेतु किया गया। नॉर्थटोप ग्रूमैन ने 2003 के शुरू में ड्रोन का शीघ्र अभिक्रिया कार्यक्रम के जरिए आधुनिकीकरण किया, जिसमें चैक के डिस्पेंसर लगाए गए और अन्य सुधार किए गए। इसमें ग्लोबल पोजीशनिंग प्रणाली (जी.पी.एस) पर आधारित प्रोग्राम योग्य, मार्ग निर्देशित प्रणालियां भी शामिल थी।

चित्र 8 वायु, समुद्र एवं भूतल पर प्रमोचित फायर बी को दर्शाता है। सन् 1970 के शुरू में कई टोही फायर बी को इजरायल में गिराया गया। इन मानवरहित वायुवाहित यानों को इजराइल के मानदंडों के अनुसार निम्न–तुंगता प्रेक्षणों से फिट किया गया और इनका नाम 'मॉडल 1241' रखा गया। इजराइलियों ने इनका नाम 'मावत' रखा जिसका अर्थ 'प्रेक्षण' होता है। इन्हें भूतल से राटो बूस्टर द्वारा प्रमोचित किया गया और मध्य आकाश में हेलिकॉप्टर के द्वारा पुनः प्राप्त किया गया। इन्हें 1990 के मध्य तक प्रयोग में लाया गया।

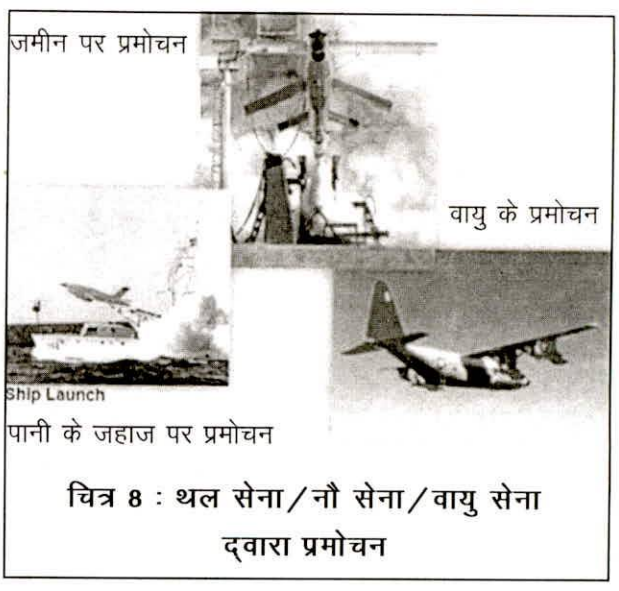

चित्र 8 : थल सेना/नौ सेना/वायु सेना द्वारा प्रमोचन

○○○

6

इस्पात–अपशिष्ट

श्री सुरेश तिवारी

इस्पात उद्योग अपने विभिन्न कार्यकलापों के कारण दूसरे उद्योगों की अपेक्षा बृहद एवं विशालकाय होता है। इस उद्योग के विशाल पैमाने पर होने के कारण, इसमें भारी मात्रा में धन, जन एवं दूसरे संसाधन, कच्चे माल लगते हैं। कन्वर्टर द्वारा इस्पात बनाने की प्रक्रिया में उच्च गुणवत्ता का इस्पात बनाना कठिन होता है। कन्वर्टर द्वारा निर्मित इस्पात को प्राथमिक इस्पात कहा जाता है। इसका उपयोग केवल उच्छिष्ट (स्कैप) को जल्दी गलाने तथा मोटे तौर पर शोधन के लिए किया जाता है। द्वितीयक इस्पान का मुख्य उद्देश्य, परंपरागत इस्पात बनाने वाली इकाईयों, जैसे कि एल.डी. (L.D.) आदि की अपेक्षा कुछ प्रचालन–विधियों को जल्दी एवं कुशलतापूर्वक संपन्न करना है।

इस्पात बनाने की विधि में प्राथमिक इस्पात से लेकर द्वियीतक इस्पात बनाना, शिला संचकन, सतत संचकन आदि सभी प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं। इस प्रकार इस्पात बनाते समय वृहद मात्रा में अपशिष्ट उत्पन्न होता है। इन इस्पात–प्रक्रियाओं का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः अपशिष्ट–सृजन को कम करना अति आवश्यक है। इसी कारण वर्तमान परिदृश्य में अपशिष्ट प्रबंधन का महत्व इतना बढ़ गया है कि कंपनियों में इसके लिए अलग से विभाग खोले जा रहे हैं। वैसे भी अपशिष्ट् को कम करने का यही एक तरीका है। अपशिष्ट् प्रबंधन द्वारा ही इस्पात–अपशिष्ट की मात्रा को कम कर पर्यावरण की संरक्षा की जा सकती है। दिन प्रतिदिन घटते प्राकृतिक संसाधन जैसे कि अयस्क, खनिज एवं अपशिष्ट ईंधन आदि की खोज में अपशिष्ट पदार्थों की उपयोगिता ढूंढ़ी जाने लगी हैं। अब ये पदार्थ उपयोगी साबित होने लगे हैं। धातुकर्मीय कारखानों के अपशिष्टों से नएं उपयोगी उत्पाद बनाए जाने लगे हैं। इस्पात उत्पादन में सतत् संचकन प्रक्रम के द्वारा से इस्पात उत्पादन के क्षेत्र में उत्पादकता, गुणवत्ता एवं ऊर्जा खपत पर विशेष एवं गहरा प्रभाव पड़ा है।

इस्पात उत्पादन में अब उभर रही तकनीक का मुख्य उद्देश्य निर्मल एवं उच्च गुणवत्ता के इस्पात का उत्पादन तथा चूना अपशिष्ट पदार्थों का सृजन करना है। इस्पात निर्माण के दौरान उपजनित अपशिष्ट ठोस पदार्थों में निम्नलिखित हैं:–

(i) स्टील मेंकिग धातुमल
   - BOF के द्वारा

(ii) इस्पात बनाने के समय उत्पन्न धूल

(iii) अपशिष्ट जल उपचार संयंत्र से निकला ठोस आपंक।

(iv) परिवर्तक, लैडल, टंडिश आदि के विइष्टिकायन (डिब्रिकिंग) के कारण प्राप्त उच्च ताप सह अपशिष्ट।

पर्यावरणी दृष्टि से इन अपशिष्ट पदार्थों का दक्ष एवं लाभप्रद तरीकों से पुनः उपयोग अथवा समुचित निपटान जरूरी है। ठोस अपशिष्टों को उपयोग में लाने के लिए

आजकल विभिन्न तकनीकें उपलब्ध हैं; जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं–

1. **लोहमय अपशिष्ट का उपयोग** : इन अपशिष्टों का सूक्ष्म गुटिकायन (पेलेटाइजेशन) करने के पश्चात् सिंटरित कर धमन मिट्टी में धान के रूप में भेजा जाता है।
2. **उच्च ताप सह अपशिष्ट का उपयोग** : इनका उपयोग कुट्टन संहति एवं मसाला बनाने के लिए किया जाता है।

ठोस अपशिष्ट के प्रयोग हेतु संभावित क्षेत्र

इस्पात–धातुमल : इस्पात बनाने के दौरान 165–200 किलोग्राम/सी.एस. की दर से धातुमल बनता है। इस्पात धातुमल का प्रयोग रेल पटरियों के नीचे डाली जाने वाली गिट्टी के रूप में किया जा सकता है। इसका प्रयोग सड़क बनाने में किया जा सकता है। इस्पात धातुमल का प्रयोग अन्य कई कार्यो उदाहरण के तौर पर मृदा अनुकूलक (Conditioner) के रूप में या जमीन के गड्ढ़ों को भरने के काम में किया जा सकता है।

(i) रेल गिट्टी (रेल वैलास्ट) :– इस्पात धातुमल तकनीकी रूप से रेल गिट्टी (आमाप 20–40 मि. मी.) के लिए उपयोगी पाया जाता है।

(ii) सड़क बनाने में :– इस्पातन धातुमल का उपयोग सड़क बनाने में हो सकता है। पत्थर के टुकड़ों के स्थान पर इस्पात धातुमल के टुकड़े लगाए जा सकते हैं। भारी वाहनों के लिए बनाए जाने वाली सड़क के निर्माण में इस्पात धातुमल का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। सड़क का निर्माण केवल इस्पात धातुमल के द्वारा भी किया जा सकता है। तुलनात्मक अध्ययन के बाद इस्पात धातुमल से बनी सड़के पत्थर की गिट्टी से बनी सड़क से बेहतर पाई गई हैं।

(iii) मृदा अनुकूलक के रूप में :– अम्लीयता वाली जमीन के लिए इस्पात धातुमल की क्षारकता एक अच्छे मृदा अनुकूलक का कार्य करती है। इस्पात धातुमल में विद्यमान फास्फोरस एक पोषक तत्व का कार्य करता है, जिससे जमीन उपजाऊ हो जाती है। इस प्रकार इस्पात धातुमल, जमीन की अम्लीयता को समाप्त करता है, जमीन में फॉस्फोरस की कमी को पूरा करता है जिससे जमीन उपजाऊ हो जाती है। लेकिन इस्पात धातुमल का उपयोग मृदा अनुकूलक के रूप में करने के लिए आवश्यक है कि धातुमल को पीसकर महीन चूर्ण बना लिया जाए।

(iv) सीमेंट बनाने में :– सीमेंट बनाने के लिए इस्पात धातुमल का प्रयोग विदेशों में जैसे चीन, जापान तथा जर्मनी आदि देशों में पहले से ही हो रहा है। ये देश सीमेंट बनाने में इस्पात धातुमल का विभिन्न अनुपातों में प्रयोग करते हैं। सीमेंट बनाने में इस्पात धातुमल दो तरीकों से उपयोग में लाया जा सकता है।

   1. साधारण पोर्टलैंड सीमेंट बनाने के लिए कच्चे माल के रूप में।
   2. पोर्टलैंड स्लैग सीमेंट बनाने के लिए अधिमिश्रण के रूप में।

(v) धातुमल–अनुकूलक के रूप में :– परितर्वक धातुमल अनुकूलक का कार्य करता है।

(vi) लोहमय अपशिष्ट :– इस्पात बनाने के दौरान जनित लोहमय महीन कण तथा गैस निर्मलन संयंत्र आपंक (GCP Sludge) आदि को प्रायः

गड्ढ़ों में फेंक दिया जाता है। इस आपंक में औसतन 40% लोह, 10% चूना (Lime) तथा शेष मैग्नीशिया आदि रहते हैं। GCP आपंक नीचे बैठ जाने के पश्चात जल एवं वायु प्रदूषण उत्पन्न करते हैं। इस महीन अपशिष्ट/आपंक का सूक्ष्म गुटिकायन कर सिंटर में किया जाता है। इस सिंटर का उपयोग धमन मिट्टी में घान के रूप में किया जाता है। सिंटरण बनाने में इस आपंक के इस्तेमाल से धमन मिट्टी की उत्पादकता बढ़ती है तथा आयरन अयस्क एवं गालक (फलक्स) की खपत घट जाती है।

(vii) उच्चतापसह अपशिष्ट : सतत संचकन में प्रयुक्त ब्लैक रिफ्रैक्टरी जैसे उपनिविष्ट नॉजल (Sub Entry Nozzle), मोनोब्लॉक (Monoblock Stopper), लैडल आवरण (Ladle Shroud) आदि के सेवाकाल समाप्त होने के पश्चात प्राप्त रिफ्रैक्टरी पदार्थ को अपशिष्ट उच्चतापसह कहा जाता है। इस प्रकार के उच्चतापसह का निपटान निम्न दो तरीकों से किया जाता है।

1. निस्तारित उच्चतापसह (Salvaged Refractory) का वह भाग जिसका पुनः प्रयोग किया जा सकता है, उसे अलग कर लिया जाता है।
2. उच्चतापसह के टूटे–फूटे टुकड़े या तो बेच दिए जाते हैं अथवा उनसे मसाला आदि तैयार कर उपयोग में लाया जाता है।

इस्पात संयंत्रों में अपशिष्ट प्रबंधन एक उभरती हुई जटिल समस्या है, जिसका निदान अपशिष्ट लेखाकरण तथा प्रचालन तकनीक से किया जा सकता है।

7

सन् 2012 में विज्ञान विषयों के नोबेल पुरस्कार

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

सन् 2012 के नोबेल पुरस्कार समिति ने विज्ञान के क्षेत्र में चिकित्सा विज्ञान, भौतिकी और रसायन विषयों के लिए नोबेल पुरस्कार प्रदान किया था। इनका विवरण आगे दिया जा रहा है।

चिकित्सा विज्ञान : सन् 2012 में चिकित्सा विज्ञान के नोबेल पुरस्कार के लिए दो वैज्ञानिकों का चयन किया गया है जिनमें 79 वर्षीय जॉन गुर्डोन तथा 50 वर्षीय शिन्या यामानाका शामिल हैं। जॉन गुर्डोन ब्रिटेन के नागरिक हैं तथा वे इंगलैंड के कैब्रिंज नगर में अपने द्वारा स्थापित 'गुर्डोन इंस्टीच्यूट' में कार्यरत हैं। इससे पहले वे कैब्रिंज विश्वविद्यालय के मैगडैलेन कॉलेज में कोशिका जैविकी के प्राध्यापक के पद पर कार्य कर चुके थे। शिन्या यामानाका जापान के नागरिक हैं तथा आजकल वे जापान की 'क्योटो युनिवर्सिटी' में कार्यरत हैं। इससे पूर्व वे सैन फ्राँसिको (संयुक्त राज्य अमेरिका) स्थित 'ग्लैडस्टोन इंस्टीच्यूट' तथा जापान के 'नारा इंस्टीच्यूट ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी' में काम कर चुके हैं।

उपर्युक्त दोनों वैज्ञानिकों को नोबेल पुरस्कार 'वयस्क कोशिका को पुनः भ्रूण सदृश मूल कोशिका में परिवर्तन' संबंधी खोज के लिए दिया गया है। ये परिवर्तित कोशिकाएं क्षतिग्रस्त मस्तिष्क, हृदय तथा अन्य अंगों के ऊतक को फिर से उगाने में सक्षम हो सकती हैं। अर्थात् इन वैज्ञानिकों द्वारा खोजी गई विधि से ऐसे ऊतकों को निर्माण किया जा सकता है जो भ्रूण कोशिका के समान काम करेंगे। अतः अब मूल कोशिका प्राप्त करने के लिए भ्रूण को नष्ट करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इन वैज्ञानिकों द्वारा की गई खोज ने कोशिका तथा ऊतकों के विकास संबंधी परंपरागत धारणा को बदल दिया है।

किसी भी जीवधारी के शरीर की शुरुआत मूल कोशिका से होती है। यह मूल कोशिका धीरे–धीरे रक्त, स्नायु, मांसपेशी, अस्थि तथा त्वचा इत्यादि के रूप में विकसित होती है। अब इन वैज्ञानिकों द्वारा की गई खोज ने आशा की एक नई किरण दर्शाइ है। अब वयस्क कोशिका को भ्रूण सदृश कोशिका में परिवर्तित कर उससे शरीर के किसी भी अंग के लिए आवश्यक कोशिका तथा ऊतक को विकसित किया जा सकता है। शरीर के किसी भी अंग के क्षतिग्रस्त होने पर अब फिर से उसका पुननिर्माण किया जा सकता है।

एक समय था जब वैज्ञानिकों की धारणा थी कि वयस्क कोशिका को मूल कोशिका में वापस परिवर्तित करना असंभव है। इसका तात्पर्य यह था कि नई मूल कोशिका का निर्माण सिर्फ भ्रूण से ही किया जा सकता था। इस प्रक्रिया में भ्रूण को नष्ट करना पड़ता था। इसका समाज में नैतिक आधार पर काफी विरोध किया जा रहा था। इसी विरोध के कारण कई देशों की सरकारों ने इस शोध पर रोक लगा दी थी।

आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व सन् 1962 में जॉन गुर्डोन संसार के पहले ऐसे वैज्ञानिक बने जिन्होंने क्लोनिंग विधि द्वारा एक मेढ़क के अंडे से एक स्वस्थ बेंगची (टैडपोल) का निर्माण किया। इसके लिए एक अन्य टैडपोल की आँत की कोशिका से प्राप्त डी.एन.ए. का उपयोग किया गया। इससे पता चला कि विकसित

कोशिका में वे सभी सूचनाएं मौजूद रहती हैं जिनसे शरीर की प्रत्येक कोशिका का निर्माण किया जा सकता है। गुर्डोन द्वारा किए गए इस प्रयोग के कुछ दशक बाद एक अन्य वैज्ञानिक द्वारा व्यस्क डी.एन.ए. से डौली नामक भेड़ क्लोन तैयार किया गया।

जॉन गुर्डोन द्वारा किए गए उपर्युक्त प्रयोग के लगभग 40 वर्षों के बाद यामानाका ने एक वयस्क चूहे की त्वचा कोशिका में कुछ जीन को प्रविष्ट कराकर चूहे की मूल कोशिका का निर्माण किया। यामानाका द्वारा किए गए इस प्रयोग से जानकारी प्राप्त हुई कि वयस्क ऊतक में जो विकास होता है, उस प्रक्रिया को पलटा जा सकता है। इसमें वयस्क कोशिका को उस प्रकार की कोशिका में वापस लाया जा सकता है जिसके गुण, भ्रूण के समान हों।

वयस्क ऊतक से निर्मित मूल कोशिका को 'प्रेरित बहु सामर्थ्य मूल कोशिका' (इयुस्ड प्लुरिपोटेंली स्टेम मूल) या संक्षेप में 'आई.पी.एस. सेल कहा जाता है। अब चूँकि किसी दिन रोगी की चिकित्सा अपने ही ऊतक से प्राप्त मूल कोशिका से की जाएगी, अतः उसे शरीर द्वारा अस्वीकार किए जाने की कोई संभावना नहीं रहेगी।

गुर्डोन के मतानुसार इस शोध का उद्देश्य सभी प्रकार की कोशिकाओं का प्रतिस्थापन (रिप्लेसमेंट) उपलब्ध कराना है। हृदय, मस्तिष्क तथा अन्य प्रमुख अंगों की अतिरिक्त (स्पेयर) कोशिकाओं को त्वचा या रक्त की कोशिका से निर्मित करने का प्रयास किया जाएगा। महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रतिस्थापित की जाने वाली कोशिकाएं उसी व्यक्ति से प्राप्त की जाएंगी जिसके शरीर में उन्हें स्थापित करना है।

भौतिकी : सन् 2012 में भौतिकी के नोबेल पुरस्कार हेतु दो वैज्ञानिकों का चयन किया गया है जिनमें 68 वर्षीय फ्राँसीसी नागरिक सर्ज हैरोक तथा 68 वर्षीय अमरीकी नागरिक डेविड जे. वाइनलैंड शामिल हैं। सर्ज हैरोक आजकल पेरिस स्थित 'कॉलेज डि फ्राँस' में कार्यरत हैं, जबकि डेविड जे. वाइनलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका में यूनिवर्सिटी ऑफ कोलोरैडो के 'नेशनल इंस्टीच्यूट ऑफ स्टैंडर्ड्स एंड टेक्नोलॉजी' (एन.आई. एस.टी.) में कार्यरत हैं।

इन दोनों वैज्ञानिकों ने अलग–अलग स्वतंत्र रूप से क्वांटम भौतिकी के क्षेत्र में प्रयोग के नए तरीकों को खोज निकाला है। उन्होंने अपने प्रयोगों द्वारा क्वांटम के एकल (सिंगल) कणों को बिना नष्ट किए उन्हें पर्यवेक्षित करने तथा मापने की विधि विकसित की है। अब एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्वांटम कण है क्या? क्वांटम कण उस प्रकार के कण को कहते हैं जो समूह के रूप में ऊर्जा का विकिरण करते हैं। क्वांटम सिद्धांत के अनुसार ऊर्जा का विकिरण अनवरत रूप से नहीं होता है, बल्कि असतत (डिसकौटिन्युयस) रूप से कणिकाओं में होता है। ये कणिकाएं पदार्थ के सामान्य कणों से भिन्न हैं। इस अवस्था में परमाणु या इलेक्ट्रॉन या फोटॉन विचित्र प्रकार के गुण प्राप्त कर लेते हैं। ये प्रायः अपना लक्षण तरंग के रूप में प्रदर्शित करते हैं, परंतु जैसे ही ये किसी चीज के साथ अंतःक्रिया (इंटरऐक्शन) करते हैं, इनके गुण तत्काल बदल जाते हैं।

हालांकि, उपर्युक्त दोनों वैज्ञानिकों ने क्वांटम कणों के प्रेक्षण एवं मापन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, परंतु उनके शोध एवं अध्ययन की विधियों भिन्न हैं। जहां वाइनलैंड ने आयनों (विद्युत आविष्ट परमाणुओं) को नियंत्रित कर उनका प्रग्रहण कर प्रकाश द्वारा उनकी माप की, वहीं हैरोक ने फोटोन नामक प्रकाश कणों को नियंत्रित कर उन्हें मापने का काम किया।

इन दोनों वैज्ञानिकों द्वारा की गई खोज, क्वांटम भौतिकी का उपयोग करके सुपरफास्ट कंप्यूटर के निर्माण की दिशा में उपयोगी होगी। इस खोज का उपयोग पूर्णतः सही समय बताने वाली घड़ियों के निर्माण में भी किया जा सकता है। इस प्रकार की घड़ियों का निर्माण अभी तक सीजियम नामक तत्व के उपयोग द्वारा होता आया है। वैज्ञानिकों के मतानुसार सीजियम घड़ियाँ जितना शुद्ध समय बताती है, उससे

सौगुनी सही समय क्वांटम कणों से निर्मित घड़ियाँ बताएंगी। अतः मानक समय देने वाली घड़ियों का निर्माण अधिक आसान हो जाएगा। इसी प्रकार कंप्यूटर के निर्माण की दिशा में क्रांतिकारी परिवर्तन आएगा। उदाहरण के तौर पर साधारण कंप्यूटर में सूचना का प्रतिनिधित्व बिटों के रूप में किया जाता है। इसमें प्रत्येक बिट का मान या तो 'शून्य' होता है, अथवा 'एक' होता है, परंतु क्वांटम कंप्यूटर में यह विशेषता होगी कि क्वांटम बिट का मान 'शून्य' तथा 'एक' दोनों एक साथ हो सकते हैं।

रसायन : सन् 2012 में रसायन के नोबेल पुरस्कार हेतु जिन दो वैज्ञानिकों का चयन किया गया है उनमें 57 वर्षीय ब्रायन कोबिल्का तथा 69 वर्षीय रॉबर्ट लेफ्कोविज शामिल हैं। ब्रायन कोबिल्का संयुक्त राज्य अमेरिका के स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी में कैलिफोर्निया स्थित 'स्कूल ऑफ मेडिसिन' में प्रोफेसर हैं। रॉबर्ट लेफ्कोविज, डरहम (नार्थ कैरोलिना, संयुक्त राज्य अमेरिका) स्थित 'ड्यूक युनिवर्सिटी मेडिकल सेंटर' में प्रोफ़ेसर हैं तथा साथ ही साथ 'हॉवर्ड हफ्स मेडिकल इंस्टीच्यूट' में अन्वेषक (इनवेस्टिगेटर) का .काम देख रहे हैं।

उपर्युक्त दोनों वैज्ञानिकों का नोबेल पुरस्कार हेतु चयन उनके द्वारा सन् 1980 के दशक में 'जी प्रोटीन युग्मितिग्राही' विषय पर किए गए महत्वपूर्ण शोध के लिए किया गया। लगभग आधी से अधिक चिकित्सा इन्हीं ग्राहियों के माध्यम से काम करती है। अतः इन ग्राहियों के बारे में सही जानकारी वैज्ञानिकों को नई औषधियों को विकसित करने में काफी सहायता पहुंचाएगी। मानव शरीर में इस प्रकार के लगभग एक हजार ग्राही पाए जाते हैं। वस्तुतः ये ग्राही कोशिका की सतहों पर मौजूद विशिष्ट संरचनाओं के रूप में पाए जाते हैं जिनके द्वारा हमारा शरीर ऐड्रिनेलिन इत्यादि अनेक प्रकार के रासायनिक संकेतों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इनमें से कुछ ग्राही हमारी नाक, जीभ तथा आँखों में मौजूद रहते हैं जो हमें सूंघने, स्वाद लेने तथा देखने में सहायता पहुंचाते हैं। वैज्ञानिकों के लिए बहुत लंबे समय से यह एक रहस्य बना हुआ था कि कोशिकाएं अपने पर्यावरण के साथ किस प्रकार ताल–मेल बैठाती हैं तथा नई परिस्थितियों में सामंजस्य स्थापित करती हैं। उदाहरणार्थ ऐड्रिनेलिन जब कोशिकाओं पर अपनी क्रिया करती है तो रक्त दाब बढ़ाती एवं हृदय गति तीव्र करती है।

वैज्ञानिकों को संदेह था कि कोशिकाओं की सतहों पर कुछ हार्मोनग्राही मौजूद हो सकते हैं। लेफ्कोविज ने रेडियोसक्रियता का उपयोग करते हुए कुछ ग्राहियों की खोज की जिनमें एक ऐड्रिनेलिनग्राही (रिसीप्टर) भी था, तथा उसने समझने का प्रयास किया कि ये ग्राही किस प्रकार काम करते हैं। सन् 1980 के दशक में कोबिल्का द्वारा किए गए अध्ययनों ने वैज्ञानिकों को यह समझने में सहायता पहुंचाई कि ग्राही का एक पूरा परिवार शरीर में पाया जाता है। इस परिवार के सभी सदस्य देखने में एक समान मालूम पड़ते हैं। ग्राहियों के इसी परिवार का नाम रखा गया 'जी प्रोटीन युग्मित ग्राही' (जी प्रोटीन कपल्ड रिसीप्टर)। सन् 2011 में कोबिल्का ने एक महत्वपूर्ण शोध किया जब उसने ऐड्रिनेलिन के ग्राही का चित्र उस समय प्राप्त किया जिस क्षण वह इस हार्मोन के प्रभाव में सक्रिय रहता है तथा कोशिका के संकेत भेज रहा होता है।

उपर्युक्त नोबेल पुरस्कार विजेताओं द्वारा की गई खोज वैज्ञानिकों को मानव शरीर की जैव रासायनिक तंत्र को विस्तार के साथ समझने में सहायता पहुंचाएगी। इन दोनों वैज्ञानिकों ने हमें स्वास्थ्य एवं रोग को समझने की दिशा में महान योगदान दिया है। इस महत्वपूर्ण खोज ने वैज्ञानिकों को रोगों की चिकित्सा हेतु नई दवाओं के विकास एवं निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। इन दोनों वैज्ञानिकों द्वारा की गई खोज ने आनुवंशिकी तथा जैव रसायन जैसे क्षेत्रों में शोध एवं विकास का नए द्वार खोल दिए हैं।

8

पेनिसिलिन : एक क्रांतिकारी औषधि

डॉ. दीपक कोहली

पेनिसिलिन औषधि इस दृष्टि से अद्‌वितीय है कि यह मानव शरीर द्‌वारा इतनी मात्रा में ग्रहण की जा सकती है। जितनी समान प्रभाव के अन्य रासायनिक पदार्थों घातक हो सकते है। मनुष्य के लिए अनिष्टकर, सर्वाधिक घातक जीवाणुओं में से कुछ का विनाश एवं वृद्‌धि अवरूद्‌ध करने का गुण इसमें है। इसका महत्व इस तथ्य से प्रकट हो सकता है कि जहां 1914–1918 के विश्वयुद्‌ध में युद्‌धगत आहतों में से 8 प्रतिशत की मृत्यु हुई, वहां द्‌वितीय महायुद्‌ध में वह संख्या 4 प्रतिशत से भी ऊपर नहीं गई। मृत्यु दर में इस कमी कारण नवीन औषधि पेनिसिलिन की सुलभता थी। इससे पूर्ववर्ती महायुद्‌ध के समय चिकित्सक को जहां पूतियुक्त (सेप्टिक) घाव का असहाय रखते, वहां आधुनिक युद्‌ध में मोर्चे पर चिकित्सक को पेनिसिलिन सुलभ थी जिससे रोगी की उचित सेवा होती, और वह स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर कार्यरत हो जाता।

पेनिसिलिन की कहानी सन् 1929 में लंदन के सेंट मेरी चिकित्सालय की जीवाणु प्रयोगशाला में प्रो. फ्लेमिंग से प्रारंभ होती है। वह एक विशेष प्रकार के जीवाणु का कृत्रिम रूप से पोषण कर रहे थे। इस स्थिति में यह जान लेना आवश्यक है कि इनका अध्ययन करने के लिए जीवाणु–वैज्ञानिक को उन्हें ऐसे उपयुक्त माध्यम तथा समुचित पारिस्थिति में पोषित करना पड़ता है कि वे संख्या–वृद्‌धि कर निवह (कॉलोनी) सृजित कर सकें। 'अगार–अगार' (एक समुद्री वनस्पति से प्राप्त उत्पाद) एक ऐसा माध्यम है, जिनमें वे भली–भांति उत्पन्न होते हैं। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि वैज्ञानिकों को इसकी सावधानी रखनी पड़ती है कि पोषित किए जाने वाले वांछित जीवाणु के अतिरिक्त किसी भी अन्य जीवाणु से वह कृत्रिम पोषित माध्यम नष्ट न होने पाएं। प्रो. फ्लेमिंग एक विशेष प्रकार के जीवाणु–दल को अगार माध्यम में कृत्रिम रूप से पोषित कर रहे थे और उन्होंने देखा कि उनका यह एक अगार–घोल संदूषित हो गया है। उसे साधारणतः सावधानी से रखने पर भी कुछ अन्य अवांछित सूक्ष्मदर्शीय जीव बने जिन्होंने उनके माध्यम को संपर्क संदूषित कर दिया है और अगार–घोल के तल पर एक सूक्ष्म नील–हरित फफूंद उत्पन्न हुआ दिखाई पड़ता है। प्रो. फ्लेमिंग ने इस्त पोषण–पात्र का ध्यानपूर्वक देखा कि जीवाणु के जिस विशेष प्रकार के निवह को वह पोषित कर रहे थे, वह फफूंद के उत्पत्ति स्थान से बहुधा लुप्त हो गई थी। स्पष्टतया यह एक ऐसा उदाहरण था जिसमें एक विशेष जीव (फफूंद) की विद्‌यमानता ने दूसरे जीव (कीटाणु निवह) की वृद्‌धि का अवरोध किया। पारिभाषिक भाषा में इसे 'जीवाणवीय अवरोध' कहा जा सकता है। पोषण पात्र की ध्यानपूर्वक परीक्षा और उल्लिखित फफूंदी के संज्ञा–ज्ञान से उसका वर्गीकरण *पेनिसीलियम नोटेट्‌म* वर्ग में किया गया। कालांतर में यह ज्ञात हुआ कि फफूंद *पेनिसीलियम नोटेट्‌म* द्‌वारा निःसृत पदार्थ पेनिसिलिन अनेक प्रकार के जीवाणुओं की और विशेषतः सेप्टिक घाव के रोगोत्पादकों का विनाश करने में समर्थ था और यह जीव के शरीर के लिए अनष्टिकर नहीं था।

सन् 1938 ई. में ऑक्सफोर्ड में प्रो. फ्लोरी और चेन द्‌वारा पेनिसिलिन के इतिहास में दूसरी महत्वपूर्ण प्रगति हुई। वे इस तथ्य की गवेषणा कर रहे थे कि एक जीवाणु, दूसरे जीवाणु पर क्यों तथा कैसे आक्रमण करता है। यह सौभाग्य की ही बात है कि *पेनिसीलियम नोटेट्‌म* पर शोध कार्य बहुत पूर्व स्थिति में ही प्रारंभ हो गया था। इन दोनों कर्मियों के अतिरिक्त अन्य मेधावी शोधकों के एक दल ने इस समस्या के विभिन्न अंगों पर कार्य प्रारंभ किया। इन गवेषणाओं के फलस्वरूप निम्नांकित निष्कर्षों पर पहुंचा जा सका–

1. 15 करोड़ में एक भाग के अनुपात विलयन में विद्‌यमान शुद्‌ध पेनिसिलिन, व्रण–विकृति के रोग के जीवाणुओं की वृद्‌धि अवरूद्‌ध रोकने में सक्षम है।
2. मस्तिष्क आवरण शोथ (मेनिन्जाइटिस) तथा प्रमेह रोग के जीवाणु व्रण–जनक जीवाणुओं की अपेक्षा (पेनिसिलिन के प्रति) दुगने संवेदनशील है।
3. पेनिसिलिन प्रस्तुत करने की तत्कालीन ज्ञान पद्‌धति के परिणामस्वरूप अन्य शुद्‌धता वाले पदार्थ भी अप्रभावित थे।

इन तीन महत्वपूर्ण निष्कर्षों से यह विदित हो सका कि मानव–कल्याण के लिए औषधि के साथ–साथ पेनिसिलिन का उपयोग युद्‌धगत आहतों के लिए भी हो सकेगा। अतएव पेनिसिलिन के बड़े पैमाने पर उत्पादन का कार्य प्रारंभ किया गया।

प्रयोगों द्‌वारा यह ज्ञात हो सका है कि *स्ट्रेप्टोकोकाइ* तथा *स्टेफिलोकोकाइ* जीवाणुओं के प्रति पेनिसिलिन सर्वाधिक प्रभावशील है और ऐन्थ्रैरेक्स, न्युमोनिया, डिप्थीरिया, जननेंद्रिय रोग तथा मेनिन्जाइटिस रोगों के जीवाणुओं के प्रति इससे भी अधिक प्रभावशील है। किंतु क्षय, टायफाइड और प्लेग रोग के जीवाणुओं के प्रति पेनिसिलिन असंवेदनशील या अप्रभावी है।

इसकी प्रभावोत्पादकता के संबंध में पहले विचार किया गया था कि पेनिसिलिन जीवाणुओं का हनन नहीं करती, बल्कि उनकी वृद्‌धि को ही अवरूद्‌ध करती है। बाद में यह ज्ञात हुआ कि जीवाणुओं का प्रत्यक्ष संहार होता है। इसकी पुष्टि हुई है कि दोनों ही बातें सत्य है। इसकी जीवाणुनाशक क्रिया इतनी प्रबल है कि एक ग्राम का 5 करोड़वां भाग बीस करोड़ जीवाणुओं को मारने के लिए यथेष्ट है।

9

अतिचालकता : उपयोग एवं अनुसंधान

प्रो. राजन कुमार तिवारी

ऐसे पदार्थ जिननें असीम चालकता होती है और जो पूर्णतः विद्युत चालक होते हैं, 'अतिचालक' कहलाते हैं। सामान्यतः सभी धातुएं विद्युत की सुचालक होती हैं, किंतु वैसे तत्व जो अपेक्षाकृत अधिक विद्युत चालकता से संतृक्त होते हैं और जिनमें प्रतिरोध क्षमता कम होती है, वे अतिचालक (सुपर कंडक्टर) कहलाते हैं। तांबा, ऐलुमिनियम, पारा आदि इलेक्ट्रॉन के प्रवाहक नहीं होने के कारण कुचालक कहलाते हैं। सुचालक पदार्थ भी पूर्णतः चालक नहीं होते हैं, क्योंकि विद्युत धारा के प्रवाह के दौरान प्रतिरोध के कारण धारा की तीव्रता एवं मात्रा में क्रमिक ह्रास होता जाता है।

अतिचालकता (सुपर कंडक्टिविटी) की खोज नीदरलैंड के प्रसिद्ध भौतिकीविद् कैंमरलिंग ओन्स ने सन् 1911 ई. में की थी। एक प्रयोग के दौरान ओन्स ने यह अनुभव किया कि जब किसी ताप सीमा के भीतर विद्युत धारा प्रवाहित की जाती है, तब कुछ पदार्थों में प्रतिरोध शून्य के स्तर तक पहुंच जाता है और धारा के प्रवाहित होने के समय इसमें कोई रुकावट या ह्रास उत्पन्न नहीं होता है। पारे पर प्रयोग करने के बाद कैमरलिंग ने यह पाया कि 4.2 (चार दशमलव दो) केल्विन तापमान पर पारा का प्रतिरोध शून्य हो जाता है। पारे की इसी स्थिति को नीदरलैंड के इस वैज्ञानिक ने अतिचालकता की संज्ञा दी।

कैमरलिंग ओन्स के प्रयोग से यह निष्कर्ष निकलता है कि अतिचालक वे धातुएं हैं, जिनकी सुचालकता अनन्त एवं पूर्ण है तथा जो प्रतिरोधरहित हैं। अनुसंधान के क्रम में प्रायः यह देखा जाता है कि कुछ धातुएं काफी उच्च ताप पर अतिचालक हो जाती हैं। उदाहरण के तौर पर, नियोबियम–टीन मिश्रातु 180 केल्विन ताप पर अतिचालक की भांति व्यवहार करता है। इसके बाद, जब इसे हीलियम ताप तक ठंडा किया जाता है, तब इसकी अतिचालकता न केवल विद्युत धारा के प्रवाह का अच्छा माध्यम होता है, अपतु यह एक पूर्ण चुंबकीय पदार्थ भी होता है, जिसे कोई भी चुंबकीय बल–रेखा भेद नहीं सकती।

अतिचालकता के क्षेत्र में होने वाले अनुसंधानों में मृत्तिकायुक्त धातु का ही सर्वाधिक उपयोग हो रहा है और इसमें अनेक सफलताएं भी हासिल की गई हैं। अतिचालक थैलियम, बेरियम, कैल्सियम एवं कॉपर ऑक्साइड आदि मृत्तिकायुक्त हैं। इन अतिचालकों का क्रांतिक ताप (Critical Temperature) 120 (एक सौ बीस) केल्विन से अधिक होना आवश्यक है। अन्य अतिचालक जिन पर अनुसंधान किए गए हैं, वे हैं– बिस्मथ परिवार के अतिचालक बिस्मथ, स्ट्रॉन्शियम, कैल्सियम एवं कॉपर ऑक्साइड। आरंभिक अवस्था में अतिचालकता का मात्र चार केल्विन पर ही प्राप्त होना संभव था, परंतु निरंतर अनुसंधान के पश्चात् ऐसे पदार्थों की खोज की गई, जो चार केल्विन से अधिक ताप पर भी अतिचालकता के समान गुण प्रदर्शित करते थे। बाद में यह ताप नाइट्रोजन के गलनांक 100 (एक सौ) केल्विन तक पहुंच गया।

अतिचालकता के क्षेत्र में अनुसंधान से संबंधित आरंभिक प्रयोग परंपरागत धातुओं– सीसा, टिन और

पारे पर ही किए गए थे। इनमें विद्युत धारा प्रवाहित करने पर चुंबकीय क्षेत्र पैदा होते ही ये अपनी चालकता खो देते थे। आई.बी.एम. की ज्यूरिख प्रयोगशाला के कार्ल एलेक्स म्यूलर द्वारा पहली बार धात्विक ऑक्साइड (जिन्हें सेरेमिक्स कहा जाता है तथा जो साधारण ताप पर कुचालक होते हैं) के साथ प्रयोग किया गया और प्रयोग के दौरान यह ज्ञात हुआ कि ये पदार्थ 35 (पैंतीस) केल्विन तापमान के स्तर पर ही अतिचालकता का गुण प्रदर्शित करने लगते हैं।

यद्यपि तत्कालीन परिस्थितियों में एलेक्स म्यूलर के प्रयोग को उपहासजनक बना दिया गया, तथापि कुछ वर्षों के बाद चीनी व जापानी वैज्ञानिकों द्वारा म्यूलर के प्रयोगों के पुनरावृत्ति की गई और अतिचालकता के ताप को 38 केल्विन तक बढ़ाने में सफलता प्राप्त की गई। इसके कुछ सालों के बाद सन् 1955 ई. में अतिचालकता के क्षेत्र में अध्ययनशील हाउस्टन विश्वविद्यालय के प्रख्यात वैज्ञानिक, पॉल सी. चू. द्वारा दाब बढ़ाने पर सेरेमिक पदार्थों के व्यवहार का प्रायोगिक विश्लेषण किया गया। इससे अतिचालकता के ताप को 52 (बावन) केल्विन तक बढ़ाने में सफलता मिली। बेरियम के स्थान पर स्ट्रॉन्शियम के उपयोग से अतिचालकता के लिए ताप में दो केल्विन की अतिरिक्त वृद्धि हुई। बाद के प्रयोग में अतिचालकता के लिए ताप में दो केल्विन की अतिरिक्त वृद्धि हुई। बाद के प्रयोग में अतिचालकता 95 (पिच्यानवे) केल्विन तक पहुंच गई। वर्तमान में शून्य प्रतिरोध के लिए अनिवार्य ताप को 240 (दो सौ चालीस) केल्विन तक पहुंचा दिया गया है।

अनुप्रयोग क्षेत्र

अतिचालक चूंकि विद्युत का संचालन ऊर्जा की क्षति किए बिना ही करते हैं, इसीलिए इनका उपयोग संरक्षात्मक संचालकों के स्थान पर संभव है। अतिचालकों का उपयोग करते हुए विद्युत परिपथों को अत्यंत कठोरता से बंद किया जा सकता है।

विद्युत प्रतिरोध–रहित होने के गुण के कारण अतिचालकों के माध्यम से लंबी दूरी तक बिजली का वितरण ऊर्जा के क्षय के बिना संभव हो सकेगा। परंपरागत चालकों में बिजली के प्रवाह से ताप–ऊर्जा का निर्माण होता है। यह अवांछित है, और चालकों के भौतिक प्रतिरोध के कारण अवांछनीय भी है। अतिचालकों के उपयोग से इस ताप से इन्सुलेटरों (चालक तारों के ऊपर चढ़ाया गया कुचालक आवरण) के गलने का खतरा भी समाप्त हो गया, क्योंकि प्रतिरोध–रहित अतिचालकों से विद्युत धारा के प्रवाह के समय ताप–ऊर्जा पैदा नहीं होगी।

इंटीग्रेटेड सर्किटो (आई.सी.) के लिए ताप–ऊर्जा घातक है तथा अतिचालकों में धारा–प्रवाह के समय ताप उत्पन्न नहीं हो सकेगा। इसीलिए, इंटीग्रेटेड सर्किटो के निर्माण में अतिचालको का उपयोग क्रांतिकारी सिद्ध हो सकता है।

अतिचालकीय क्वांटम इंटरफेरेंस डिवाइसेज़ (स्क्विड) का उपयोग हृदय रोग के उपचार में सहायक हो सकता है। मैग्नेटा–कार्डियोग्राम की सहायता से हृदय में उत्पन्न विद्युत धारा का अध्ययन किया जा सकता है।

अतिचालक विद्युत चुंबकीय वलयों का उपयोग कर किसी भी वस्तु को पृथ्वी पर अथवा पृथ्वी से आकाश में प्रेषित किया जा सकता है।

न्यूक्लियर मैग्नेटिक रेजोनेंस (एन.एम.आर) या मैग्नेटिक रजोनेंस (एम.आर) मशीन में अतिसंचालक इलेक्ट्रोमैग्नेट (विद्युत चुंबक) का उपयोग होता है। यह मशीन त्वचा को काटे बिना रोगी के हृदय का प्रतिरूप तैयार कर सकती है। इसकी सहायता से शरीर के किसी भी आंतरिक अंगों का विस्तृत चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है, जो चिकित्सा के क्षेत्र में अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो सकेगा।

चुंबक–प्रोत्थापित रेलगड़ियां (मैग्नेटिकली लैविटेटेड ट्रेंस) (एम.एल.टी)

परिवहन के क्षेत्र में क्रांति ला सकती हैं। चुंबकीय शक्ति से चलित रेलगाड़ियां तीव्र गति से चलती हैं। इस प्रकार की गाड़ियों में पहिए नहीं होते। साधारण रेलगाड़ियों की अपेक्षा चुंबकीय शक्ति से चलित रेलगाड़ियों के तेज चलने का कारण चुंबकीय प्रभाव से इन गाड़ियों का पटरियों से चार इंच ऊपर चलना है। पटरी से चार इंच ऊपर चलने से घर्षण उत्पन्न नहीं होगा और गति सीमा में बाधा भी नहीं आती है। इन गाड़ियों की गति लंबी दूरी तक बनी रहती है। मैग्नेटिकली लेविटेटेड रेलगाड़ियां जर्मनी और अब चीन में चलाई जा रही हैं, जिनकी गति सीमा 750 (साढ़े सात सौ किलोमीटर) प्रति घंटा तक है। इसके अतिरिक्त अतिचालकता का प्रयोग उच्च शक्ति वाले छोटी विद्युत कार एवं कंप्यूटर में भी किया जा रहा है।

भारत में अनुसंधान एवं प्रयोग

हमारे देश में भी निस्संदेह अतिचालकता के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य चल रहे हैं। अतिचालकता के क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास कार्यों को गति देने के लिए सन् 1987 ई. में भारत सरकार ने प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कार्यक्रम प्रबंधन बोर्ड (पी.एम.बी.) का गठन किया। वर्ष 1991 में इसका रूपांतरण कर दिया गया और इसे राष्ट्रीय अतिचालकता विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी बोर्ड (एन.एस.एस.टी.बी.) का नाम दिया गया।

राष्ट्रीय अतिचालकता कार्यक्रम के अंतर्गत प्रथम चरण (1981–91) में विभिन्न संस्थानों में पैंसठ (65) परियोजनाओं का क्रिवान्वयन किया गया। वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी.एस.आई.आर.)ए डी.ए.ई., भारतीय तकनीकी संस्थान (आई.आई.टी.) तथा अन्य प्रमुख विश्व–विद्यालयों में इनकी प्रयोगशालाएं स्थापित की गई थीं। राष्ट्रीय अतिचालकता कार्यक्रम के प्रथम चरण की समाप्ति अक्तूबर, 1991 में हुई।

राष्ट्रीय अतिचालकता कार्यक्रम के अंतर्गत द्वितीय चरण (अक्तूबर, 1991 से मार्च, 1995 तक) में छह नई परियोजनाओं की शुरूआत की गई। इसके अंतर्गत वायट्रियम, विस्मथ एवं थैलियम जैसे अतिचालकों के विशेष एवं उच्च–स्तरीय प्रयोग तथा अनुसंधान कार्य हुए। इन समस्त परियोजनाओं का लक्ष्य है – आधारभूत अनुसंधान, प्रौद्योगिकी विकास, अनुप्रयोग, अंशकालिक प्रदर्शन इत्यादि। समस्त अनुसंधानों एवं विकास का उपयोग जिन संदर्भों की संवृद्धि के लिए किया जा रहा हैं– निर्णायक, तापमान, निर्णायक धारा धनत्व, नए पदार्थों का संश्लेषण तथा विशिष्टीकरण, विशेषक क्यू. एम.जी. तथा एम.वाय.एम.जी. तकनीकों द्वारा परिमाण नमूनों का निर्माण, मोटे अथवा महीन फिल्मों का विकास, तार अथवा टेप रेखांकन आदि।

पूणे विश्वविद्यालय, मद्रास विश्वविद्यालय, अन्ना विश्वविद्यालय (मदुराई), कामराज विश्वविद्यालय आदि के शोधकर्ता द्वारा अतिचालकता के क्षेत्र में विशेष अनुसंधान कार्य किए जा रहे हैं। मद्रास विश्वविद्यालय में मुख्यतः परिमाण अतिचालकता पदार्थों पर अध्ययन कार्य चल रहे हैं। अन्ना विश्वविद्यालय एवं कामराज विश्वविद्यालय में अतिचालकता के क्षेत्र में सैद्धांतिकता पर सर्वाधिक ध्यान केंद्रित किया गया है। चेन्नई के आई.आई.टी. के पदार्थ विज्ञान विभाग में निम्न निर्णायक ताप तथा उच्च निर्णायक ताप मान वाले अतिचालकीय पदार्थ निर्मित तथा संश्लेषित किए जा रहे हैं। बेंगलूरु स्थित भारतीय विज्ञान संस्थान की ठोस अवस्था संरचनात्मक रासायनिक इकाई में उच्च ताप वाले अतिचालकों पर शोधकार्य चल रहे हैं। यहां अतिचालकों के पतले फिल्म निर्माण पर कार्य जारी है। कुछ वर्ष पूर्व वैज्ञानिकों द्वारा एक त्रिविमीय ताम्र की खोज की गई। इससे पहले इस ऑक्साइड के उच्च तापीय अतिचालकों का द्विमीय उपयोग ही संभव था। पिछले दशक में वायट्रिम ऑक्साइड नामक एक अतिचालक की खोज की गई, जो उच्च ताप पर अतिचालकता का गुण प्रदर्शित करता है।

अतिचालकीय क्वांटम स्किड्स

नई दिल्ली की राष्ट्रीय प्रयोगशाला में द्रव नाइट्रोजन ताप 77 (सतहत्तर) केल्विन पर एक उच्चताप अतिचालकीय क्वांटम स्किड का विकास किया गया है। स्किड्स भूगर्भीय और जैव–चुबंकत्व के अनुप्रयोगों में सहायक होते हैं। किंतु, समस्त शोधों का अभी व्यावसायीकरण संभव नहीं हो पाया है, क्योंकि द्रव हीलियम की तरह ही अतिनिम्न ताप पर यह युक्ति चालित नहीं हो सकती। इसलिए, भारतीय वैज्ञानिकों ने अनुकूल पदार्थों का विकास किया है।

संरक्षणात्मक अतिचालकीय चुंबकीय विभाजक

भारत में संरक्षात्मक अतिचालकीय चुंबकीय विभाजकों का उपयोग कुदेरमुख परियोजना, इंडियन रेअर अर्थ्स में जिरकोनियम प्रसंस्करण तथा राष्ट्रीय खनिज विकास निगम में ब्लूडस्ट के प्रसंस्करण में किया जाता है।

भारत भारी इंजीनियरी लिटिडेड (BHEL) में एक अतिचालकीय उच्च श्रेणी की चुंबकीय विभाजक प्रणाली का विकास किया गया है। इस शोधकार्य में राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला, राष्ट्रीय खनिज विकास निगम तथा भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र ने सुंयक्त रूप से सहयोग दिया है।

इन समस्त विकसित अतिचालकीय चुंबकीय विभाजक प्रणालियों से मूल खनिज–अयस्कों से सूक्ष्म चुंबकीय अशुद्धियों को दूर करने में महत्वपूर्ण सफलता मिली है।

अतिचालकीय यौगिकों की उपलब्धि

मद्रास विश्वविद्यालय के नाभिकीय भौतिकी विज्ञान विभाग ने 110 (एक सौ दस) केल्विन और 80 (अस्सी) केल्विन के निर्णायक ताप पर एकप्रावस्था यौगिकों का भी निर्माण किया है।

m m m

10

हरड़ : एक बहूपयोगी औषधि

डॉ. दिलीप कुमार मौर्य

भारतीय उपमहाद्वीप के प्रायः सभी भागों में पाए जाने वाले हरड़ एक अत्यंत उपयोगी औषधीय वृक्ष है। प्राचीन भारतीय चिकित्सा शास्त्र, आयुर्वेद के अलावा आधुनिक वनस्पति एवं चिकित्सा वैज्ञानिकों ने भी इसमें पाए जाने वाले गुणकारी तत्वों की खोज कर इसकी विशेषता को प्रमाणित किया है।

परिचय : वैज्ञानिक नाम – टर्मिनेलिया रेटीकुलाटा (*Terminailia Raticulata*)

कुल : कार्नफ्रिटेसी (Cornfretaceae)

विभिन्न भाषाएं हरड़ का नाम :

संस्कृत	*हरीतकी*
हिंदी	*हरड़, हर्रे*
गुजराती	*हरड़ें*
बंगला	*हरीतकी*
मराठी	*हिरडा*
कन्नड़	*अणिलेकाबी*
तमिल	*अंकेन/कुडुभारा*
मलयाली	*कटुक्काभार*
फारसी	*हलिले*
अरबी	*एहलीलज*

सामान्य परिचय : हरड़ का वृक्ष मूलतः निचले हिमालयी क्षेत्र में रावी तट से लेकर पूर्वी बंगाल, असम तक पांच हजार फीट की ऊँचाई वाले भागों में पाया जाता है। सामान्यतः 10 से 80 फुट ऊँचाई तक पाए जाने वाले इस वृक्ष की छाल गहरे भूरे रंग की होती है। इसके पत्ते 'वासा' (अडूसा) के पत्ते जैसे 7.20 सेमी. लंबे, 4 सेमी. तक चौड़े होते हैं। फूल छोटे, पीताभ, श्वेत, मंजरियों में होते हैं। फल 3–5 सेमी. लंबे अंडेकार होते हैं, इसके पृष्ठ भाग पर पाँच रेखाएं होती हैं। कच्चे फल हरे होते हैं, जो पकने पर धूसर पीले रंग के हो जाते हैं। प्रत्येक फल के मध्य में एक बीज होता है। इस बीज के ऊपर कठोर आवरण होता है, जिसे तोड़ने पर अंदर से मुलायम गिरी या मुलायम गूदा निकलता है।

फल–फूल : हरड़ के वृक्ष में अप्रैल–मई में नए पत्ते आते हैं। फूल शीतकाल में लगते हैं। मैदानी भागों में दिसंबर के मध्य से फल आना शुरू हो जाता है। मार्च से अप्रैल के मध्य इसके फल तैयार हो जाते हैं। इसके फल का उपयोग औषधीय कार्यों में होता है।

जातियां, प्राप्ति–क्षेत्र एवं विशेषताएं : आयुर्वेद के अनुसार हरड़ की सात जातियां होती हैं– चेतकी (हिमालय), विजया (सिंधु), चंपा, अमृता, अभया, सोरठा एवं जीवंती। हिमालय क्षेत्र में पाई जाने वाली चेतकी हरड़ सौम्य तथा विंध्य क्षेत्र की आग्नेय गुणों से युक्त होती है, इसकी दो जातियां मिलती हैं। काली–सफेद विजया हरड़ तुंबी की तरह गोल होती है तथा मुख्य रूप से विंध्य क्षेत्र में पैदा होती है। रोहिनी साधारणा गोल होती है तथा सिंधु क्षेत्र में उत्पन्न होती है। चंपा हरड़ की गुठली बड़ी और छाल पतली होती है। अमृता जाति के हरड़ की गुठली छोटी और छाल मोटी होती है। अभया जाति के हरड़ के फल के ऊपर उभरी हुई पाँच रेखाएं होती हैं। जीवंती हरड़ का रंग सोने की तरह पीला होता है।

बाजार में दो प्रकार की हरड़ बिकती है – छोटी और बड़ी। बड़ी हरड़ में पत्थर के समान सख्त गुठली होती है जो छोटी में नहीं होती। वे फल जो पेड़ से गुठली बनने के पहले अपरिपक्व हालत में ही गिर जाते हैं या तोड़कर सुखा लिए जाते हैं, उन्हें छोटी हरड़ कहते हैं। पूर्ण परिपक्त हरण ही बड़ी हरण कहलाती है। रोगोपचार में छोटी हरण ही ज्यादा उपयोगी होती है। इसका प्रभाव सौम्य और शांत होता है, इसमें तेजी नहीं होती है। उत्पादन प्रक्रिया के अनुसार हरड़ के तीन भेद किए जा सकते हैं। पूर्ण विकसित परिपक्व फल या बड़ी हरड़ अर्धपक्व या पीली हरड़, जिसका गुदा काफी मोटा एवं कसैला होता है तथा अपक्व फल या छोटी हरड़।

उत्पति क्षेत्र : 'डयूथो' ने अपने चर्चित वनस्पति वैज्ञानिक पुस्तक *फ्लोरा ऑफ अपर गैंगेटिक प्लेन* में लिखा है कि, ''हरड़ का मूल स्थान गंगा का मैदानी भाग ही है।'' आधुनिक कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार हरड़ इंडो–मलाया क्षेत्र की वनस्पति है। यहीं से इसका फैलाव एशिया, भारत, नेपाल, दक्षिण–पश्चिम चीन और श्रीलंका में हुआ।

हरड़ में पाए जाने वाले रासायनिक यौगिक : हरड़ में अनेक उपयोगी यौगिक पाए जाते हैं जो इस प्रकार हैं– टैनिक अम्ल (20–40 प्रतिशत), गैलिक, अम्ल, चेबुलिनिक अम्ल और म्यूसिलेज/रेचक पदार्थ तथा ऐन्थ्राक्विकोन श्रेणी के ग्लाइकोसाइड आदि। इनमें से एक की संरचना सनाय के सीनोसाइड 'ए' से मिलती –जुलती है। इसके अलावा हरड़ में 10 प्रतिशत जल, 13.9 से 16.4 प्रतिशत अविलेय पदार्थ होते हैं। 'वेल्थ ऑफ इंडिया' के अनुसार, ''ग्लूकोस, सर्विटॉल, फ्रक्टोज, स्यूक्रोस, माल्टोस, अरैबिननोस हरड़ में पाए जाने वाले प्रमुख कार्बोहाइड्रेट हैं। इसमें 18 प्रकार के मुक्त ऐमीनो अम्ल मिलते हैं तथा फास्फोरिक एवं सक्सिविक अम्ल भी होते हैं। पकने के साथ फल में टॉनिक अम्ल की मात्रा घटती जाती है। बीज से एक तीव्र तेल भी निकलता है।''

वैज्ञानिक की दृष्टि में हरड़ : आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार, ''हरड़ में उपलब्ध विभिन्न ग्राही पदार्थ प्रोटीनों को परस्पर आबद्ध कर देते हैं। विख्यात भारतीय औषधि विशेषज्ञ डॉ. घोष ने अपनी 'मैटेरिया मेडिका' में कहा है कि हरड़ में पाया जाना वाला टॉनिक अम्ल श्लेष्मा झिल्लियों के श्लेष्मा और ऐल्बूमिन की स्थिर परत वहां बना देते हैं, जिससे शरीर के उस कोमल भाग की रक्षा होती है। यह अम्ल आंतों की संकुचित करता है तथा रक्तस्राव को कम कर देता है। अतिसार में अत्यधिक रक्तस्राव रोगी को कमजोर बनाता है। टैनिक अम्ल जीवाणुनाशक है जो बाह्य रोगाणुओं को नष्ट करता है व दुर्गंध को समाप्त करता है। इस विशेष प्रभाव के कारण ही हरड़ के एनिमा (क्वाथ/स्वरस) से व्रणीवृहदांत्रशोथ (अल्सरेटिव कोलाइटिस) जैसे असाध्य रोग भी शांत होते देखे गए हैं। 'पेपेवैरी' के समान शूल निवारक क्षमता भी हरड़ में पाई गई है। हरड़ का मुख्य रेचक पदार्थ 'ऐन्थ्राक्विनोन' अपना प्रभाव बड़ी आंत पर विशष रूप से दिखलाता है। सेवन के मात्र 6 घंटे में ही इसका प्रभव शुरू हो जाता है। यह पुरानी कब्ज से आंतों को बिना किसी नुकसान पहुंचाए मुक्ति दिलाता है। यद्यपि यह वात, पित्त और कफ तीनों का शमन करता है पर विशेष रूप से यह वातशामक है। अतएव समग्र कायिक संस्थानों पर इसका रोग–शामक प्रभाव पड़ता है। इसके प्रयोग से दुर्बल नाड़ियां समर्थ बनती हैं, इंद्रिय सामर्थ्यवान होती है, कोषीय एवं अंतःकोषीय संस्थानों के शोथ–निवारण की क्रिया में भी यह अत्यंत प्रभावकारी भूमिका निभाती है।''

श्री नाडकर्णी के अनुसार, ''हरड़ एक निरापद, सौम्य, विरेचक औषधि है। साथ ही यह ग्राही भी है, अर्थात् मल निष्कासन को सुव्यवस्थित करती है। अंदर के रसों की अनावश्यक हानि नहीं होने देती है। रेचन एवं ग्राही दोनों परस्पर–विरोधी स्वभाव मात्र हरड़ में ही मिलते हैं, जो इसे विलक्षण गुणों से युक्त कर देते हैं। उसके कच्चे फल, पके फलों की अपेक्षा अधिक रेचक होते हैं। इससे पित्त कम होता है। आमाशय व्यवस्थित

हो जाता है तथा बवासीर के मस्से उभरना तथा शिराओं का फूलना बंद हो जाता है। लंबे काल की पेचिश, दस्त में यह अत्यंत लाभकारी है। सभी प्रकार के कृमियों का नाश कर वायु–निष्कासन एवं उदर शूल में हरड़ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

कर्नल चोपड़ा के अनुसार, ''हरड़ कषाय, प्रधान विरेचक एवं बलवर्धक है।''

डॉ. घोष के अनुसार, ''यह आंतों की जीर्ण व्याधियों में विशेष लाभकारी है।''

डॉ. एग्री के अपने शोध में स्पष्ट किया है कि ''यह अनियंत्रित विरेचन क्रिया में भी लाभकारी है तथा आंतों को सुव्यवस्थित करने में सहायक है।''

डॉ. डीमेक के अनुसार, ''दिन में दो बार तीन–तीन ग्राम हर्रे खाने से दस्त दूर हो जाते हैं।''

डॉ. बोरिंग के अनुसार, ''छह छोटी हरड़ का काढ़ा बनाकर देने से पाँच–छह बार दस्त होकर पेट का शूल और वमन नष्ट हो जाता है, तथा पेट साफ होता है। इसमें थोड़ी दालचीनी डालने से यह स्वादिष्ट और लाभप्रद हो जाती है। सामान्य तौर पर हर्रो में गुड़ मिलाकर सेवन किया जाता है।

आयुर्वेद में हरड़ : युगों–युगों से हरड़ का प्रयोग जन कल्याण हेतु प्राचीन भारतीय चिकित्सकों द्वारा होता चला आया है। भारतीय चिकित्सा पद्धति के अनुसार, ''किसी भी द्रव्य (औषधि) में 6 रसों में से कोई एक रस पाया जाता है, लेकिन हरड़ में एक साथ पाँच रस पाए जाते हैं, इसमें केवल लवण नहीं होता। लवण को छोड़कर अन्य पाँच मधुर, कसाय, अम्ल, कटु एवं तिक्त रसों से युक्त होना हरड़ को अनेक रोगों में उपचार में लाभकारी है।''

6–8वीं शताब्दी ई. पूर्व में रचित *चरक संहिता* के अनुसार, '' हरड़ कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त, श्वांस (यक्ष्मा), पांडु रोग, अर्श, ग्रहणी रोग, विषम ज्वर, हृदय रोग, शिरो रोग, अतिसार, अरुचि, कास, प्रमेह, प्लीहावृद्धि, नूतन उदर रोग, मुख से कफ का स्राव, स्वरभेद, शरीर की छाया में विकृति, कामला रोग, कृमि रोग, शोथ, तमक श्वास, वमन, नपुंसकता आदि सहित अनेक रोगों हृदय तथा शरीर में भारीपन, स्मरण शक्ति और बुद्धि का व्यामोह दूर करने में सक्षम है।''

चरक के अनुसार, ''यह दोषों का अनुलोमन करती है तथा दीपन और पाचन करने वाली है। इसके निरंतर सेवन से आयु सूखपूर्वक व्यतीत होती है। यह पुष्टिकारक है, अर्थात् हरीतकी सेवी पुरुष रोग के भय के बिना, सुखी, स्वस्थ्य जीवन व्यतीत करता है। यह बुद्धि एवं इंद्रियों को बल देने वाली है।

चौथी–पाँचवी शताब्दी ई. पू. में रचित *सुश्रुत संहिता* में इसे व्रण के लिए हितकारी, उष्ण, विचेरक, मेदनाशक, शोथ–कुष्टनाशक, कशाय, अग्निदीपक तथा नेत्रों के लिए हितकारी बताया गया है। (सु.सं.2.1.1)।

सोलहवीं शताब्दी के चर्चित आयुर्वेदिक ग्रंथ *भावप्रकाश* के अनुसार, ''हरीतकी धारणशक्ति (मेधा) के लिए हितकारी, पचने में मधुर है। यह वृद्धावस्था में होने वाले रोगों को दूर करने वाली, तरुणाई को लंबे समय तक बनाए रखने वाली, नेत्रों के लिए खुजली, हृदय रोग, कामला, शूल, प्लीहा, यकृत, अश्मरी, मूत्रकृच्छ एवं मूत्राघात को दूर करती है। (भाव प्र. 19–22)

भाव प्रकाश के अनुसार, ''विंध्य क्षेत्र में पाई जाने वाली हरड़ 'विजया' सभी रोगों में, सिंधु क्षेत्र की 'रोहिनी' व्रण–पूरण के रूप में, 'पूतना' प्रलेप हेतू, 'अमृता' शोधन हेतु, 'अभया' आँख के रोगों में तथा 'जीवंती' संपूर्ण रोगों में विशेष लाभकारी है। कोई–कोई हरड़ तो छूने, सूँघने एवं स्पर्श मात्र से ही मल का भेदन कर देती है।''

प्राचीन भारत में हरड़ : पाँचवी शताब्दी में भारत भ्रमण पर आए चीनी यात्री एवं चिकित्सक इत्सिंग ने लिखा है– ''भारत में लगभग सभी घरों में एक विशेष औषधि का प्रयोग होता है, जो सभी रोगों से बचाव

करती है। यहाँ तक कि उपवास में भी कमजोरी एवं भूख, प्यास की कमी पूरी करती है। वह गोली हर्रे, काली मिर्च, सोठ, एवं पीपर तथा शहर से तैयार की जाती है।''

हारित संहिता के अनुसार, ''हारित मुनि ने अगस्त ऋषि को आरोग्य संबंधी हरड़ को ही सर्वाधिक गुण संपन्न बतलाया है। उनके अनुसार –

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।

सभी रोगों की जड़ कुपित हुआ मल ही है और हरड़ इस मल को ही प्रमुख रूप से नियमित करती है।

उन्नीमलनी बुद्धिबलेंद्रियाणां
निर्मूलनी पित्तकफानिलानम्।
विसांसिनी मूत्रशयकृन्मलानां
हरीकी स्यात् सह भोजनेन।।

छोटी हरड़ को यदि भूनकर थोड़ी मात्रा में सेंधा नमक या काले नमक के साथ चूर्ण बनाकर अल्प मात्रा में भोजन के साथ लिया जाए तो यह बुद्धि, बल, इंद्रियों की कार्यशक्ति विकसित करती है तथा वात, पित्त, कफ आदि त्रिदोषों का शमन करती है। साथ ही मल, मूत्र, पसीना इत्यादि मलों को भी बाहर निकालती है।

वैद्यकशास्त्र के प्रणेता 'लोलिंबराज' ने इसे 'शिवा' (श्वास कास की औषधि–माँ पार्वती का रूप) कहा है–

घनविश्वशिवा गुड़जा गुटिका त्रिदिनं
वदनाम्बुलजमध्यधृता।
हरति श्वशनं कसनं ललनेव हिमं हृदयोपगता।।

उपरोक्त श्लोक में वे अपनी पत्नी से कहते हैं– ''प्रिय घन (मोथा) विश्व (सोंठ) एवं शिवा (हरड़) इनको बराबर मात्रा में लेकर पुराना गुड़ मिलाकर गोली बनाकर तीन दिन नित्य चूसने से रोगी के श्वास–कास ऐसे भाग जाते हैं जैसे वरांगना के साहचर्य से शीत पलायन कर जाता है। इसके प्रयोग हेतु एक राजा को बतलाते हुए वे कहते हैं–

हरीतकी भुंक्ष्व राजन् मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुपिता माता नोदरस्था हरीतकी।।

हे राजन्! आप अनेक कटुक, कूटज, कषाय औषधि न खाकर केवल हरड़ का ही नित्य सेवन करें। यह माता (शिवा) के समान हितकारिणी है। माता कभी किसी कारणवश कुपित हो भी सकती हैं, मगर उदस्थ होने पर हरड़ कभी कुपित नहीं होती। यह प्रत्येक स्थिति में अनेक रोगों का हरण करती है।

राजावल्लभ निघंटु का भी कथन कुछ इसी प्रकार का है–

यस्य माता गृहेनास्ति तस्य मातां हरीतकी।
कदाचितं कुप्यते माता, नोदरस्था हरीतकी।।

ग्रीष्म ऋतु में गुड़ के साथ, वर्षा में सेंधा नमक, शरद में शक्कर, हेमंत में सोंठ के साथ, शिशिर में पीप्पली एवं बसंत में मधु के साथ हरड़ का सेवन विशेष लाभकारी है।

हरस्य भवने जात हरिता च स्वभावतः।
हरते सर्वरोगां, तस्मात् प्रोक्ता हरीतकी।।

श्री हर (महादेव) के घर में उत्पन्न होने से हरित वर्ण की होने से तथा सब रोगों का हरण करने में समर्थ होने से ही इसे हरीतकी कहा जाता है।

सदैव निरोग : वजनदार अच्छी हर्रे कपड़छन करके 3–5 ग्राम चूर्ण घी में मिलाकर रोज खाएं। मौसम के साथ अनुपान।

फल का चयन और प्रयोग : औषधीय प्रयोग के लिए डेढ़ तोला से अधिक भार का फल जो छिद्र रहित, गुठली युक्त, बड़े खोल वाला हो तथा पानी में डूब जाए; लेना चाहिए।

1. हारीतकी को चबाकर खाने से जठराग्नि में वृद्धि होती हैं।
2. पीसकर हारीतकी चूर्ण का प्रयोग मल शोधन में विशेष लाभकारी होता है।
3. उबालकर प्रयोग करने से यह मल रोकता है।

4. भूनकर खाने से यह वात, पित्त एवं कफ का नाश करता है, अर्थात् त्रिदोष से मुक्ति दिलाता है।
5. भोजन के साथ प्रयोग करने पर बुद्धि, बल, एवं इंद्रियों को विकसित करता है।

हमारे शरीर में भी एकत्र होने वाले अनेक आविष जो हवा, पानी, अन्न एवं अन्य माध्यम से शरीर में प्रवेश कर एकत्र होते रहते हैं, उन्हें मल के रूप में बाहर निकालने तथा शरीर को शुद्ध बनाने के लिए पास सहस्राब्दियों से परीक्षित हरितवर्णा हरीतकी सुलभ है।

वर्जना : कमजोर शरीर वाले, अवसाद–जनित मानसिक रोगों से ग्रस्त, लंबा उपवास कर रहे व्यक्ति और गर्भवती स्त्रियों के लिए हरड़ का प्रयोग निषिद्ध है।

हरड़ की खेती :

पौधा प्रवर्धन : हरड़ का प्रवर्धन बीज के द्वारा करते हैं। इसके लिए पककर अपने से जमीन पर गिरे फलों को इकट्ठा करते हैं और सूर्य की रोशनी में दो–तीन दिनों तक सुखाते हैं। उसके बीज के ऊपर के भाग को सावधानीपूर्वक हटाते हैं। बीज को नर्सरी में बोने से पहले 48 घंटों तक पानी में भिंगोते हैं। बीज की बोआई मानूसन आने से कुछ ही दिनों पूर्व करते हैं। नर्सरी संस्तर पॉलीथिन से या घास से ढंक देते हैं। बीजों का अकुंरण 15 से 20 दिनों में हो जाता है। एक महीने पुराने पौधों को फिर पॉलीथिन बैग में लगाते हैं, उसे कुछ दिनों के लिए छाया में रखते हैं और समय–समय पर पानी देते रहते हैं।

पौध को लगाना : नर्सरी से एक वर्ष पुरानी पौधों को मुख्य खेत में बरसात के महीने में लगाते हैं। पौध लगाने से पहले 30 × 30 × 30 सेमी. आकार का गड्ढा तैयार करते हैं। पौध लगाने के बाद गोबर की खाद तथा मिट्टी से गड्ढे को भर देते हैं। पौधों को 7 से 8 मीटर की दूरी पर लगाते हैं। हरड़ का पौधा 30 वर्षों में पूर्ण विकसित हो जाता है।

11

दाराशा नौशेरवां वाडिया

जगनारायण

भारत में भूवैज्ञानिक गतिविधियों को आरंभ करने वालों में से एक प्रमुख वैज्ञानिक नौशेरवां वाडिया थे। भारतीय भूविज्ञान के अध्ययन के लिए पाठ्य–पुस्तकों सहित अन्य पठनीय सामग्रियों को उपलब्ध कराने में उनकी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। इस दिशा में उनके द्वारा रचित *जियोलॉजी ऑफ इंडिया फॉर स्टूडेंटस* नामक पुस्तक एक उपयोगी कृति है जिसे मैकमिलन एंड कंपनी ने प्रकाशित किया है।

डॉ. वाडिया का जन्म 23 अक्तूबर 1883 ई. में गुजरात प्रांत के सूरत महानगर के एक अत्यंत संभ्रांत पारसी परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम नौशेरवां वाडिया और माता का नाम कुबर बाई वाडिया था। वे अपने माता–पिता की नौ संतानों में चौथे थे। उनका परिवार सूरत में पुराने समय के चर्चित जलयान निर्माता कुल से संबंधित था। इनके एक पूर्वज आदर्शगीर कुर्सीतजी (1870–1877) ने 1861 में रॉयल सोसायटी लंदन का फेलो चुने जाने का गौरव प्राप्त किया था। रॉयल सोसायटी का फेलो चुने वाले वे पहले भारतीय थे। कुर्सीतजी नौसेना वास्तुविद् और सागरीय अभियंता थे।

वाडिया के पिता रेलवे में मुलाजिम थे। दाराशा के पढ़ने की उम्र होने के समय पर उनके पिता की रेलवे में स्टेशन मास्टर के पद पर ऐसी जगह नियुक्ति हो गई जहां पढ़ाई के लिए विद्यालय का सर्वथा अभाव था। इस परिस्थिति के चलते पढ़ाई के लिए उन्हें दादी के पास सूरत में रखा गया। शुरू में उनका प्रवेश एक गैर–राजकीय गुजराती विद्यालय में कराया गया। लेकिन बाद को उनका प्रवेश जे.जे. इंगलिश स्कूल में करा दिया गया। उनकी प्राथमिक शिक्षा जे.जे. स्कूल में ही पूरी हुई। लगभग ग्यारह वर्ष की उम्र में उनका परिवार सूरत से बड़ौदा आ गया। बड़ौदा आने पर उनका प्रवेश बड़ौदा हाईस्कूल में करा दिया गया। इस विद्यालय से सोलह वर्ष की उम्र में उन्होंने हाईस्कूल की शिक्षा पूरी करने के बाद बड़ौदा कॉलेज में प्रवेश ले लिया। बड़ौदा कॉलेज से उन्होंने विज्ञानस्नातक की दो उपाधियां क्रमशः 1903 में प्राणि विज्ञान और वनस्पति विज्ञान में पहली और 1905 में दूसरी बी.एस.सी भूविज्ञान और वनस्पतिविज्ञान में प्राप्त की। बड़ौदा कॉलेज में उनके शिक्षक आदजी मसानी ने उन्हें भूविज्ञान की ओर प्रेरित किया। प्रो. आदजी गंभीर श्रेणी के प्रकृतिविज्ञानी थे। लेकिन उस समय बड़ौदा कॉलेज में भूविज्ञान की पढ़ाई के जरुरी साधनों के अभाव में उन्होंने स्वयं के प्रयास से अपनी पढ़ाई पूरी की।

उन दिनों प्रख्यात स्वतंत्रता–संग्राम–सेनानी और बाद में संत बन गए, अरविंदो घोष अंग्रेजी विभाग में प्राध्यापक थे। दाराशा प्रो. अरविंदो घोष से बहुत अधिक प्रभावित हुए। बड़ौदा में 'म्यूजियम ऑफ आर्ट और साइंस' नामक एक संग्रहालय था। यहां संरक्षित नमूनों ने उन्हें भूविज्ञान की पढ़ाई मे विशेष प्रेरणा दी। इस संग्रहालय की स्थापना बड़ौदा के शासक सयाजीराव गायकवाड़ की देख–रेख में हुई थी।

सन् 1907 में उनकी नियुक्ति जम्मू और कश्मीर राज्य के प्रिंस ऑफ वेल्स महाविद्यालय में भूविज्ञान

विभाग के प्रोफेसर के पद पर हो गई। यहां उन्होंने लगातार चौदह वर्ष तक अध्यापन–कार्य किया। अपने इस चौदह–वर्षीय अध्यापन काल के दौरान उन्होंने अंग्रेजी साहित्य का भी अध्यापन किया था।

प्रिंस ऑफ वेल्स कॉलेज में अपने अध्यापन के दिनों में प्रो. वाडिया छुट्टियों के अवसर को हिमालय की तलहटी के भू–वैज्ञानिक अध्ययन में बिताया करते थे। भू–वैज्ञानिक तथ्यों के व्यावहारिक पक्षों के संकलन और अध्ययन में उनकी रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई, जिसके कारण उन्होंने 1912 से अध्ययन कार्य छोड़कर भारतीय भू–सर्वेक्षण विभाग में सहायक अधीक्षक जैसे सर्वेक्षण के पद पर कार्य करना आरंभ किया। प्रो. वाडिया पहले व्यक्ति थे जिन्हें भारतीय भू–सर्वक्षण विभाग में बिना किसी विदेशी उपाधि के ही इस महत्वपूर्ण पद पर नियुक्ति मिली थी। इस विभाग में कार्य करते हुए प्रो. वाडिया को उत्तर पश्चिमी हिमालय की भू–स्तरिकी और विवर्तनिकी के संबंध में जानकारी पाने के रुचि को और बढ़ावा मिला।

प्रो. वाडिया ने उत्तर–पश्चिमी हिमालय के भूवैज्ञानिक मानचित्रण के कठिनतम् और श्रमसाध्य कार्य को चुनौती के रूप में स्वीकार किया। अपने परिश्रम और लगन से उन्होंने उत्तर–पश्चिमी कश्मीर के भूवैज्ञानिक तथ्यों का संग्रह कर इस क्षेत्र के भूवैज्ञानिक इतिहास पर विशद प्रकाश डाला।

भारतीय मृदाविज्ञान के क्षेत्र में प्रो. वाडिया का कार्य मील का पत्थर साबित हुआ है। प्रो. वाडिया ने मृदाविज्ञान के अध्ययन पर अपना विशेष ध्यान केंद्रित किया और अपने लेखन के साथ ही अन्य प्रयासों से इस विषय पर विशेष प्रकाश डाला। उनके इस तरह के प्रयास का ही परिणाम था कि सन् 1935 ई. में भारत का पहला मृदा मानचित्र प्रकाशित हो सका। कृष्णन और पी.एन. मुकर्जी के साथ मिलकर उनके द्वारा बनाया गया मृदा–मानचित्र, जिसे भारतीय सर्वेक्षण विभागों ने प्रकाशित किया था, आगे के दिनों के लिए भारतीय मृदा के क्षेत्र में काम करने वालों के लिए आधार बना और बाद में भारतीय मृदा से संबंधित अनेक भू–चित्रों का निर्माण हुआ। प्रो. वाडिया का यह कार्य भारतीय कृषि–वैज्ञानिकों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य था। भारतीय मृदा के संबंध में उनके अध्ययन को देखते हुए सन् 1935 ई. में ऑक्सफोर्ड में आयोजित 'विश्व मृदा कांग्रेस' में भाग लेने वाले दल में बतौर प्रतिनिधि उन्हें शामिल किया गया था।

सन् 1938 ई. में भारतीय भू–सर्वेक्षण विभाग से सेवा निवृत्ति होकर उन्होंने श्रीलंका में सरकारी खनिज वैज्ञानिक के रूप में काम करना शुरू किया। सन् 1957 ई. में प्रो. वाडिया को रॉयल सोसायटी ऑफ लंदन का फेलो चुना गया। आजादी के बाद प्रो. वाडिया को विशिष्ट भूवैज्ञानिक सेवाओं को देखते हुए सन् 1963 ई. में भारत सरकार ने उन्हें भूविज्ञान का 'प्रथम राष्ट्रीय प्राध्यापक' बनाया। भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' सम्मान भी प्रदान किया। इसके अतिरिक्त उन्हें अनेक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हुए थे। 15 जून 1969 में प्रो. वाडिया ने इस नश्वर शरीर का परित्याग कर दिया।

m m m

m m m

12

अभिनव वैज्ञानिक जानकारी

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

- **भारतीय मूल के वैज्ञानिक द्वारा रोबोट का दिमाग बनाया गया**

सुयंक्त राज्य अमेरिका में भारतीय मूल के वैज्ञानिक डॉ. जगन्नाथ सारंगपाणि द्वारा रोबोट के लिए दिमाग का निर्माण किया गया है। यह एक प्रकार का फीडबैक सिस्टम है, जिससे रोबोट कम निगरानी में भी बेहतर कार्य कर सकता है। डॉ. सारंगपाणि, मिसौरी युनिवर्सिटी ऑफ साइंस एक टेक्नोलॉजी में कार्यरत हैं। उन्होंने रोबोट के लिए त्रुटि–सह नियंत्रण डिजाइन (फॉल्ट कंट्रोल डिजाइन) विकसित किया है। यह डिजाइन रोबोट को सौंपे गए किसी काम को पूरा करने में उसकी क्षमता को बढ़ाता है। नए फीडबैक सिस्टम में यदि लीडर रोबोट सिस्टम या मशीन रूप हो जाती है तो उसका अनुसरण करने वाला रोबोट स्वतः लीडर रोबोट का स्थान ले लेता है। फीडबैक सिस्टम के उपयोग से सुरक्षा प्रणाली, माइनिंग और हवाई निगरानी में इस प्रकार का रोबोटिक सिस्टम बहुत उपयोगी साबित होगा। उड़ान के दौरान विमान में तकनीकी समस्या आने यह यह सिस्टम उसका हल अविलंब निकाल लेगा।

- **बोलीविया में डायनोसौर के पद–चिह्न खोजे गए**

कभी–कभी कुछ चीजें ऐसी जगहों पर पाई जाती है, जहां उनके पाए जाने की कोई संभावना नहीं रहती। ऐसा ही एक स्थान है बोलीविया में सुवरे नामक नगर के निकट स्थित 'कल ओर्को दीवार'। चूना–पत्थर से निर्मित 300 फीट ऊंची इस दीवार पर पाँच हजार से अधिक पैरों के निशान मिले हैं। भूवैज्ञानिकों के मतानुसार ये निशान डायनोसौर के पैरों के हैं। भूविज्ञानिकों का अनुमान है कि आज से लगभग 6 करोड़ 80 लाख वर्ष पूर्व यह दीवार मिट्टी की समतल जमीन हुआ करती थी, जिस पर डायनोसौर उछल–कूद मचाया करते थे। आज से लगभग 7 करोड़ वर्ष पूर्व 'कल ओर्को दीवार' के निकट एक झील मौजूद थी। पानी पीने और शाकाहारी जंतुओं के शिकार हेतु डायनोसौर यहां आया करते थे, जिनके पैरों के निशान आज भी हमें दिखाई पड़ते हैं।

- **अधिकांश भारतीयों को है हृदय रोग का खतरा**

हृदय रोग से जुड़े खतरों के संबंध में किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि लगभग 70 प्रतिशत भारतीय 'हृद् वाहिका' (कार्डियो वैसकुलर) रोगों के खतरे से जूझ रहे हैं। सफोला लाइफ स्टडी 2013 में भाग लेने वाले एक 86 हजार शहरी सहभागियों में से लगभग 70 प्रतिशत को हृद वाहिका रोग के खतरे से ग्रस्त पाया गया। विगत तीन वर्ष के दौरान मुंबई के 29 हजार सहभागियों पर किए गए अध्ययन में लगभग 72 प्रतिशत मुंबई वासियों में हृद वाहिका रोग का खतरा

मौजूद पाया गया। अध्ययन में यह भी पता चला कि मुंबई वासियों में हृदय को सुरक्षा प्रदान करने वाले एच.डी.एल. का स्तर बहुत कम है। देखा गया कि लगभग 44 प्रतिशत मुंबई वासी प्रत्येक सप्ताह में कम से कम दो परिक्षित या प्रसंस्कारित खाद्य पदार्थों का उपयोग करते हैं। इस कारण हृदय रोग से ग्रस्त होने का खतरा काफी बढ़ जाता है।

- **जॉर्जिया के दमानिस्की नगर में मिली लाखों वर्ष पुरानी खोपड़ी**

सही स्थिति में सुरक्षित लगभग 18 लाख साल पुरानी खोपड़ी ने मानव के विकास संबंधी इतिहास पर नया प्रकाश डाला है। शोधकर्ता के मतानुसार प्रारंभिक मानव एक ही 'होमो इरेक्टस' प्रजाति का था। वह अफ्रीका से यूरेशिया की ओर गया था। वैज्ञानिकों ने इस नर खोपड़ी का अध्ययन कर निष्कर्ष निकाला है कि आदि मानव विभिन्न श्रेणियों के होने बावजूद एक ही प्रजाति से संबंधित थे।

18 लाख वर्ष पुरानी उपर्युक्त खोपड़ी सन् 2005 में पूर्वी यूरोपीय देश जॉर्जिया के दमानिस्की नगर के निकट पाई गई पाँच खोपड़ियों मे से एक है। इसका नाम 'स्कल–5' रखा गया था। अब तक वैज्ञानिक लोग दाँतों या शरीर के अन्य अंगों के आधार पर विश्लेषण करते थे। यह पहला अवसर था जब कि इसका मस्तिष्क वाला भाग आज के आधुनिक मानव के मस्तिष्क का एक तिहाई है तथा इसके जबड़ तथा भौहें ऊपर की ओर उभरी हुई हैं। आज का मानव 'होमो सेपियंस' प्रजाति का एकमात्र जीवित सदस्य माना जाता है कि 20 लाख वर्ष पहले हिमयुग के शुरुआत के समय वह अफ्रीका में रहता था। उपर्युक्त खोपड़ी के अध्ययन के बाद प्रश्न उठता है कि उस समय क्या अफ्रीका में होमो की अनेक प्रजातियां थीं?

- **दिल्ली में तीन–चार प्रतिशत बच्चों में अतिरक्त दाब (हाइपरटेंशन)**

दिल्ली में दस हजार बच्चों पर किए गए एक अध्ययन में 3–4 प्रतिशत बच्चों में अतिरक्त दाब (हाइपरटेंशन) की बीमारी पाई गई। इनमें पांच साल की उम्र के बच्चे भी शामिल हैं। 'अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान ने कम और मध्यम उम्र वर्ग के बच्चों पर यह अध्ययन किया है और अतिरक्त दाब, हृदय रोग से होने वाली मौतों का प्रमुख कारण है। इस अध्ययन से संबंधित एक शोध पत्र हाल ही में 'इंडियन जरनल ऑफ एंडोक्राइनोलॉजी' में प्रकाशित किया गया है। इस शोध पत्र में बताया गया है कि अतिरक्त दाब के मामले अधिक बॉडी मास इंडेक्स, (बी.एम.आई.) वाले लोगों में अधिक होते हैं। बी.एम.आई. मोटापे का पैमाना माना जाता है। इस अध्ययन का नेतृत्व डॉ. उमेश कपिल द्वारा किया गया, जिनके मतानुसार ऐसे लगभग 70 प्रतिशत बच्चे, जिन्हें अतिरक्त दाब है, यदि वे अपनी जीवनशैली नहीं बदलेंगे, तो वे इस बीमारी के साथ ही बड़े होंगे। उन्हें खान–पान नियंत्रित करने और व्यायाम करने की आवश्यकता है।

- **हिमालय में हिम मानव का निवास था**

हिमालय क्षेत्र में पहले कभी हिम मानव (येती) की उपस्थिति की चर्चा समय–समय पर प्रायः सुनने में आया करती थी। उदाहरणार्थ हिमालय पर पर्वतारोहण करने वाले रेनहोल्ड मेसनर ने बताया था कि उन्हें हिमालय में ऐसा विशालकाय प्राणी मिला था जिसके बड़े–बड़े पैर और बाल थे। हाल में वैज्ञानिकों द्वारा किए गए शोधों से इसकी पुष्टि हो गई है। ब्रिटेन में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्याल के वैज्ञानिकों ने हिमालय से जुड़े इस रहस्य को सुलझाने में सफलता प्राप्त की है। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में मानव आनुवंशिकी के प्रो.

ब्रियान सीक्स के अधीन कार्यरत शोधकर्ताओं ने बालों के आनुवंशिक (जेनेटिक) परीक्षण से निष्कर्ष निकाला है, कि आज से लगभग सवा लाख वर्ष पूर्व हिमालय क्षेत्र में हिम मानव का अस्तित्व था। उसके बाद हिम मानव के वंशज बने भूरे भालू (ब्रोउन बीयर)। इन शोधकर्ताओं के मतानुसार आज के ध्रुवीय भालू (पोलर बीयर) उसी हिम मानव के वंशज हैं।

- **आपके मस्तिष्क के लिए आवश्यक है नींद**

अत्यंत व्यस्ततापूर्ण दैनिक कार्य–कलाप के कारण लोग प्रायः मानसिक तनाव से ग्रस्त हो जाते हैं। वस्तुतः यह तनाव हमारे मस्तिष्क में पाचन के दौरान उत्पन्न होने वाले आविषी पदार्थ के कारण होता है। परंतु विशेषज्ञों का मानना है कि इसकी चिकित्सा हेतु किसी मनोचिकित्सक के पास जाने की जरूरत नहीं है। हाल ही में किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि अच्छी तथा भरपूर नींद ही हमारे मस्तिष्क के इन आविषी पदार्थों की सफाई कर देती है। यह सफाई नींद के दौरान हमारा मस्तिष्क स्वयं करता है। हमारे मस्तिष्क की कुशल 'अपशिष्ट निष्कासन प्रणाली' नींद के दौरान अत्यंत सक्रिय हो जाती है एवं एल्जाइमर तथा मस्तिष्क संबंधी अन्य रोगों को पैदा करने वाले खतरनाक आविषी पदार्थों की सफाई करती रहती है। यह अध्ययन न्यूयार्क के रोचेस्टर विश्वविद्यालय में कार्यरत शोधकर्ताओं द्वारा किया गया है। इस अध्ययन से संबंधित एक शोधपत्र हाल ही में 'साइंस' नामक पत्रिका में प्रकाशित किया गया है। इस शोधपत्र में यह भी बताया गया है कि अच्छी नींद से हमारी स्मरणशक्ति तेज होती है।

- **शरीर को छरहरा बनाने हेतु मिर्च का सेवन कीजिए**

छरहरा शरीर देखने में सुंदर एवं आकर्षक मालूम पड़ता है, जबकि मोटा तथा थुलथुल शरीर बदसूरत एवं बेढब लगता है। यही कारण है कि आजकल अधिकांश लोग अपने शरीर को छरहरा (स्लिम) बनाने हेतु सदैव प्रयासरत रहते हैं। ऐसे लोगों के लिए हाल के वैज्ञानिक शोधों से एक अच्छी खबर निकल कर आई है। अमरीकी वैज्ञानिकों ने हाल ही में अपने शोधों से निष्कर्ष निकाला है कि मिर्च का नियमित सेवन कर आप अपने शरीर का वजन घटा सकते हैं, तथा शरीर को छरहरा बना सकते हैं। इन शोधकर्ताओं ने बताया कि मिर्च में मौजूद 'कैप्सेसिन' नामक तत्व शरीर की उपायचय (मैटाबोलिज्म) प्रक्रिया को तीव्र करता है। इसके कारण शरीर में मौजूद अतिरिक्त कैलोरी अधिक मात्रा में खर्च होने लगती है तथा शरीर का वजन अधिक नहीं बढ़ पाता। कैप्सेसिन नामक पदार्थ हरी तथा लाल मिर्च के अलावा गोल मिर्च (काली मिर्च) तथा अदरक में भी पाया जाता है। परंतु जिन लोगों को अम्लता (एसिडिटी) की शिकायत है उन्हें मिर्च के सेवन से दूर ही रहना चाहिए।

- **नहीं होगा सन् 2032 में पृथ्वी को क्षुद्र ग्रह से खतरा**

संयुक्त राज्य अमेरिका की अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' के वैज्ञानिकों के मतानुसार कुछ समय पूर्व पृथ्वी के निकट से गुजरने वाला 1300 फीट व्यास वाला क्षुद्र ग्रह सन् 2032 में पुनः लौटेगा, परंतु पृथ्वी के साथ उसके टकराने की संभावना बहुत ही कम है। 'टीवी–135' नामक यह क्षुद्र ग्रह 16 सितंबर 2013 को पृथ्वी के अत्यंत निकट से गुजरा था जब पृथ्वी से उसकी दूरी 67 लाख किलोमीटर थी। परंतु उस समय वैज्ञानिक लोग उसकी खोज नहीं कर पाए। उसकी खोज 8 अक्तूबर 2013 को यूक्रेन के 'क्रिमियन एस्ट्रोफिजिक्स ऑबजर्वेटरी' में काम कर रहे खगोलविदों द्वारा की गई। नासा के पैसाडोना (संयुक्त राज अमेरिका) स्थित 'जेट प्रॉपल्सन लेबोरेटरी' के *नियर अर्थ ऑबजेक्ट*

प्रोग्राम के मैनेजर योमैंस ने बताया कि सन् 2032 में पृथ्वी से इसका टकराव नहीं होगा।

- **उम्रदराज होने का रहस्य बताएगी डी.एन.ए. में छिपी शरीर घड़ी**

उम्र बढ़ने के रहस्य को एक अमरिकी वैज्ञानिक ने सुलझाने का प्रयास किया है। इस वैज्ञानिक का नाम है– स्टीव होवथ जो लॉस एंजेलेस के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में कार्यरत है। उसने डी.एन.ए. में छिपी हुई 'शरीर घड़ी' (बॉडी क्लॉक) को ढूंढ लिया है। इसकी सहायता से कोशिकाओं और अंगों की उम्र का पता लगाया जा सकता है। स्टीव हावेथ ने अपने शोधों में पाया कि शरीर के अलग–अलग अंग अलग–अलग गति से काम करते हैं। उनके मतानुसार यदि हम शरीर घड़ी की कार्य प्रणाली को अच्छी तरह समझ लें तो हम उम्र बढ़ने की गति को नियंत्रित करने में कामयाबी हासिल कर सकते हैं तथा बुढ़ापे को दूर रखा जा सकता है।

- **जापानी बुखार का पहला देशी टीका तैयार**

अपने देश में मासूमों की जानलेवा जापानी बुखार या मस्तिष्कशोथ (जापानी इनसेफेलाइटिस) से लड़ने के लिए अब चीन निर्मित टीकों पर निर्भरता समाप्त हो गई है। अपने देश में ही निर्मित जापानी मस्तिष्कशोथ का पहला टीका तैयार हो गया है। इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च (आई.सी.एम.आर.) तथा निजी टीका कंपनी 'भारत बायोटेक' ने साझा अभियान के अंतर्गत पांच साल के भीतर ही सबसे सुरक्षित टीके की खोज कर ली है। राष्ट्रीय टीकाकरण अभियान के अंतर्गत दिए जा रहे इस टीके की कीमत 70 रुपए होगी, जबकि खुले बाजार में इस टीके की कीमत 300 रुपए रखी गई हैं। इस टीके का नाम रखा गया है – 'जेनवैक'। अपने देश में इस टीके के निर्माण से मासूमों को उपर्युक्त जानलेवा बीमारी से सुरक्षा तो मिलेगी ही, साथ ही दुर्लभ विदेशी मुद्रा को भी बचाया जा सकेगा।

○○○

13

विज्ञान समाचार

डॉ. दीपक कोहली

- **विषाणु करेगा प्रोस्टेट कैंसर का इलाज**

कनाडा के वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रोस्टेट कैंसर का विषाणुओं से इलाज किया जा सकेगा। इस नई चिकित्सा विधि में कैंसर कोशिकाओं पर हमला करके नष्ट करने से पहले उनकी पहचान की जाती है। इसके लिए विषाणुओं के आम परिवार से एक रीयोवायरस का इस्तेमाल किया जाता हैं विषाणु पहले ही गर्भाशय और स्तन कैंसर सहित कई तरह की कैंसर कोशिकाओं पर हमला कर नष्ट करने में कामयाब रहा है। 'टोम बेकर कैंसर सेंटर' के कैंसर विभाग में कैंसर विशेषज्ञ डॉन मॉरिस के नेतृत्व वाली वैज्ञानिक टीम ने अपने अनुसंधान के लिए पहले चरण में छह लोगों पर परीक्षण किया जो प्रोस्टेट कैंसर की आरंभिक अवस्था में थे।

वैज्ञानिकों ने रीयोवाइरस को प्रोस्टेट के भीतर इंजेक्शन के जरिए इसे कैंसर ग्रंथिका में पहुंचा दिया। तीन हफ्ते बाद उन्होंने मरीज के मानक उपचार के तौर पर लोगों के प्रोस्टेट हटा लिए। तब उन्होंने यह देखने के लिए ऊतक का विश्लेषण किया कि रीयोवाइरस ने किस तरह काम किया। वैज्ञानिकों ने कुछ ही समय में पाया कि विषाणु कई कैंसर कोशिकाओं को नष्ट करता प्रतीत हुआ तथा और अधिक कैंसर कोशिकाओं पर हमला करने के लिए खुद के प्रतिकृति भी भेजता रहा।

- **प्रतिजैविक (एंटीबायोटिक) प्रतिरोध पर नई खोज**

प्रतिजैविक (एंटीबायाटिक) महत्वपूर्ण जीवनरक्षक औषधि हैं, लेकिन इनका अगर ठीक से प्रयोग न किया जाए तो इनके कारण जीवाणुओं व विषाणुओं में प्रतिरोध पैदा होने लगता है।

जब किसी रोगी को प्रतिजैविक औषधि दी जाती है तो ये औषधियां जीवाणुओं के डी.एन.ए. में उत्परिवर्तन करने लगती हैं जिनमें से कुछ प्रतिजैविक के प्रति प्रतिरोध का कारण बन जाते हैं।

हाल में की गई खोज से यह ज्ञात हुआ है कि जीवाणुओं में उत्परिवर्तन की दर कभी–कभी प्रतिबल (स्ट्रैस) के दवाब में बढ़ जाती है जिससे प्रतिरोध को बल मिलता है। इस अध्ययन में यह बात भी सामने आई कि निम्नस्तरीय उपचार से अनेक मामलों में प्रतिरोध शुरू होता है और यह प्रतिरोध केवल उस औषधि विशेष के प्रति ही नहीं होता है बल्कि प्रतिजैविक औषधि के पूरे समूह के प्रति होता है। यदि वैज्ञानिक ऐसे अणुओं का पता लगा सकें जो अतिउत्परिवर्तन को रोक दें तो उनको प्रतिजैविकों (एंटीबायोटिकों) के साथ मिलाया जा सकता है जिससे प्रतिरोध के विकास को कम किया जा सकता है।

- **कृत्रिम समांतर आनुवंशिक कूट**

वैज्ञानिकों ने जिंदगी के बेस डी.एन.ए. का समांतर रूप विकसित करने में सफलता प्राप्त की है। यह चमत्कार कर दिखाया है कैंब्रिज विश्वविद्यालय के प्रो. जैसन चिन और उनकी टीम ने यह समांतर डी.एन.ए. बनाया और वह नई तरीके की प्रोटीन भी बना सकता है। इससे मानव शरीर को अधिक स्वस्थ और शक्तिशाली बनाने में मदद मिलेगी।

मानव जेनेटिक कोड में चार शब्द होते हैं, जिन्हें आनुवंशिकी कूट (न्यूक्लियोटाइड्स कोड) कहा जाता है। तीन न्यूक्लियोटाइड मिलकर एमीनो अम्ल के एक

कोडोन का निर्माण करते हैं। ऐसे 64 कोडोन आनुवंशिकी में पाए जाते हैं। कैंब्रिज की टीम ने ऐसे 256 कोडोन बनाने में सफलता प्राप्त की है। समांतर आनुवंशिकी कूट के एमीनो अम्ल पहले से ज्यादा मजबूत हैं। यह ज्यादा ताप व अम्लता का मुकाबला करने में सक्षम है।

- **प्रतिरक्षा चिकित्सा (इम्यूनोथैरेपी) से होगा कैंसर कोशिकाओं का नाश**

ब्रिटेन और अमेरिका के वैज्ञानिक अब प्रतिरक्षा–चिकित्सा से बच्चों के कैंसर का उपचार करने की तैयारी में हैं जिसमें रोगी के शरीर की रोग–निरोधक क्षमता को इतना बढ़ाया जाएगा कि स्वयं उसका शरीर ही कैंसर कोशिकाओं को ढूंढ–ढूंढ कर नष्ट कर दे। वैज्ञानिकों को आशा है कि प्रतिरक्षा चिकित्सा की मदद से अब वयस्कों की ही नहीं, बल्कि कैंसरग्रस्त बच्चों का भी उपचार संभव हो सकेगा।

लंदन में होने वाली इस क्रांतिकारी जांच–परख में चार साल तक हर साल करीब 40 बच्चों को शामिल किया जाएगा। ये सभी बच्चे उच्च जोखिम वाली श्रेणी के होंगे। इन सभी बच्चों को पहले कैंसर के सामान्य उपचार के तौर पर रसायन–चिकित्सा की जाएगी और फिर बची हुई कैंसर कोशिकाओं को ढूंढ निकालने के लिए प्रतिरक्षा–चिकित्सा, जिसमें प्रतिरक्षी (एंटीबॉडीज) कैंसर की कोशिकाओं यानी प्रतिजन (एंटीजन) की सतह पर खास अणुओं के साथ खुद को जोड़ लेते हैं। कैंसर की कोशिकाओं के साथ जुड़ने के बाद प्रतिरक्षी, शरीर की रोग–प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं जो कैंसर की कोशिकाओं को चुन–चुन कर उन पर हमला करके उन्हें नष्ट कर देती है।

इस जांच–परख का नेतृत्व कर रही लंदन के गेटऑमंड स्ट्रीट हॉस्पिटल की कैंसर रोग विशेषज्ञ डॉ. पेनेलोप ब्रौक के अनुसार प्रतिरक्षा चिकित्सा को शुरुआती इलाज के रूप में अपनाने के बजाए बच्चों का पहले कैंसर के सामान्य रूप से किया जाने वाला उपचार ही किया जाएगा। उन्होंने बताया कि प्रतिरक्षा चिकित्सा की पहली जांच–परख ब्रिटेन के 20 बाल कैंसर संस्थानों में तंत्रिकाकोशिका प्रसू अबुर्द (न्यूरोब्लास्टोमा) कैंसर से ग्रस्त बच्चों पर किया जाएगा।

- **मच्छर बचाएंगे मलेरिया से**

मच्छरों से फैलने वाली बीमारियों में से मलेरिया प्रमुख है। वैज्ञानिकों ने ऐसे मच्छर विकसित किए हैं, जो मलेरिया फैलाएंगे नहीं बल्कि रोकेंगे। इसके लिए उनके जीन में बदलाव किया गया है। यानी माता–पिता के गुणों को संतानों में ले जाने वाले तत्व में ही परिवर्तन कर दिया गया है।

यह जीन उत्परिर्तित मच्छर जब किसी को काटेगा तो ठीक एक टीके की तरह ही, उस व्यक्ति के शरीर से मलेरिया के खिलाफ प्रतिरोधी क्षमता आ जाएगी। यानी ये मच्छर भविष्य में उड़ते हुए टीके बन जाएंगे। इस शोध को जापान की जीची मेडिकल यूनिवर्सिटी ने किया है। इस तरह से मलेरिया की जैविक रोक की जा सकेगी। शोध में मच्छर की लार ग्रंथियों को ही निशाना बनाया गया क्योंकि यह बीमारी उस समय फैली है जब मच्छर खून चूसता है।

- **मधुमेह का नौ जीनों द्वारा होगा सटीक इलाज**

वैज्ञानिकों ने मधुमेह से जुड़े नौ जीन खोजने का दावा किया है। 'टाइप टू डायबिटीज' के सटीक उपचार की दिशा में इसे बड़ी सफलता माना जा रहा है। इसी बीमारी से दुनिया भर में 22 करोड़ से अधिक लोग प्रभावित हैं।

दुनिया भर के 174 अनुसंधान केंद्रों के एक दल ने 1,20,000 से अधिक मरीजों के जीन और रक्त शर्करा का अध्ययन किया। इसमें नौ ऐसे जीन सामने आए जो रक्त में मौजूद शर्करा के प्रति शरीर की प्रतिक्रिया को नियंत्रित करते हैं। टाइप–2 मधुमेह में शरीर के ऊतक इंसुलिन के असर के लिहाज से प्रतिरोधी हो जाते हैं और नियमित ग्लूकोस की आवश्यकता होती है। रोगी अपने भोजन और व्यायाम के माध्यम से इस बीमारी पर लगाम कस सकते हैं लेकिन अक्सर इंसुलिन लेना

जरूरी होता है। अध्ययन दल का नेतृत्व करने वाले प्रमुख शोधकर्ता जिम विल्सन (एडिनबर्ग विश्वविद्यालय) के अनुसार यह खोज आश्चर्यजक तरीके से महत्वपूर्ण है। रक्त शर्करा के स्तर को प्रभावित करने वाले इन नए जीनों की खोज मधुमेह के उपचार के नए तरीके विकसित करने की दिशा में बड़ा कदम है। उन्होंने कहा कि अब पता लगाया जा सकेगा कि कौन से प्रोटीन को दवा की जरूरत है।

- **पंख का डी.एन.ए. सैंपल पक्षियों का राज खोलेगा**

पश्चिमी के मुकाबले पूर्वी हिमालय क्षेत्र में पक्षियों की अधिक जातियां पाई जाती हैं। दोनों क्षेत्रों में अंतर का कारण क्या है, वैज्ञानिक ठीक–ठीक नहीं जानते। लेकिन इस सवाल का जवाब अब पक्षियों के पंख के डी.एन.ए. सैंपल से मिलेगा।

देहरादून स्थित भारतीय वन्य जीव संस्थान और शिकागो यूनिवर्सिटी के विशेषज्ञों ने यह तलाश शुरू की है। पूर्वी हिमालय में जहां दार्जिलिंग, सिक्किम जैसे खूबसूरत इलाके शामिल हैं, वहीं पश्चिमी हिमालय में खास तौर पर गढ़वाल और कुमाऊं आदि की पहाड़ियां आती हैं। पिछले अध्ययनों में पूर्व–पश्चिमी हिमालय में पक्षी जातियों में अंतर के जो कारण सामने आए, उनमें पहला है– पूर्वी हिमालय में ताप अधिक होने के चलते वह क्षेत्र अधिक उर्वर है। दूसरा यह कि इस क्षेत्र में वर्षा मिश्रित वन अधिक हैं। विशेषज्ञों के मुताबिक यह पारिस्थितिक विविधता पक्षी–विविधता के रूप में सामने आती है।

परियोजना से जुड़े भारतीय वन्य जीव संस्थान के वैज्ञानिकों के अनुसार पूर्वी हिमालय में यह विविधता अधिक होने के पीछे ऐतिहासिक मूल भी हो सकता है। इसकी जांच के लिए पक्षियों के पंख के डी.एन.ए. सैंपल लिए गए हैं। शोधकर्ताओं के अनुसार ऐसा पहली बार किया जा रहा है। यह परियोजना वर्ष 2012 तक चलनी है। इसके पश्चात् पक्षियों की किस्मों से संबंधित सवालों के लगभग सारे जवाब सामने होंगे।

- **लेजर से नाभिकीय संलयन होगा**

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि एक वर्ष के भीतर लेजर के इस्तेमाल से नाभिकीय सम्पन्न करवाने में सफलता मिल जाएगी जिससे बिजली पैदा की जा सकेगी। वैज्ञानिकों का कहना है कि यदि इसमें सफलता मिलती है तो विश्व में ऊर्जा की समस्या तो हल होगी ही साथ ही कार्बन उर्त्सन की समस्या से भी छुटकारा मिल जाएगा। इससे वैश्विक तापन से निपटने में मदद मिलेगी। दुनिया भर के वैज्ञानिकों लंबे अर्से से प्रयोगशाला में नियंत्रित नाभिकीय संलयन करवाने की कोशिश में लगे हैं, किंतु अभी इसमें सफलता नहीं मिल सकी है। प्रयोगशाला में नाभिकीय संलयन कराने की एक विश्वस्तरीय परियोजना फ्रांस में चल रही है। इसमें कई देशों के वैज्ञानिक भागीदारी कर रहे हैं। वैज्ञानिक वर्ष 2015 तक नाभिकीय संलयन मिशन के पूर्ण होने की उम्मीद कर रहे हैं। यदि यह तकनीक विकसित कर ली जाती है तो बिजली का भारी मात्रा में उत्पादन आसानी से करना संभव हो जाएगा।

- **ई–कचरे से खतरा**

संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार मोबाइल, फोन और कंप्यूटरों के कचरे से पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए भारी खतरा पैदा हो रहा है। यह रिपोर्ट संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण कार्यक्रम ने तैयार की है।

रिपोर्ट में चेतावनी देते हुए कहा गया है कि इसे रोकने के लिए नए नियम व कानून तैयार किए जाएं जिससे इस तरह के कचरे को फेंकने के लिए कड़े मानदंड लागू किए जा सकें। रिपोर्ट के अनुसार इलेक्ट्रॉनिक कचरा दुनिया में प्रतिवर्ष चार करोड़ टन की रफ्तार से बढ़ रहा है। विशेष रूप से भारत और चीन जैसे देशों में अगले 10 वर्षों में यह 500 फीसदी तक बढ़ जाएगा। इलेक्ट्रॉनिक कचरा विशेष रूप से विकासशील देशों में बड़ी समस्या का रूप धारण करता जा रहा है, जहां इसके निस्तारण की कोई पुख्ता तरीका नहीं है। दूसरी ओर विकसित देशों में इलेक्ट्रॉनिक कचरे के निस्तारण के लिए पुनश्चक्रण (री–साइकलिंग) किया जाता है।

○○○

निकष

लोहा व इस्पात उत्पादन

लोहे व इस्पात का उत्पादन एक ऐसा विषय है जिस पर हिंदी में प्रामाणिक जानकारी प्रायः उपलब्ध नहीं होती। इस दिशा में शब्दावली अयोग ने भारतीय इस्पात प्राधिकरण (स्टील ऑथोरिटी ऑफ इंडिया) के पूर्व उपाध्यक्ष डॉ. गोकुलानंद मुखर्जी की पुस्तक 'लोहा व इस्पात उत्पादन' प्रकाशित करवाकर एक अभाव की पूर्ति की है। पुस्तक इस्पात उत्पादन के संबंध में सांगोपांग विवरण प्रस्तुत करती है जो लेखक के इस क्षेत्र में विपुल व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक ज्ञान का साक्षात् प्रमाण है।

इस्पात बनाने की धमन भट्टी की जानकारी, उवरा आयतन, क्षमता, उत्पादकता, धमनी उत्पादकता बढ़ाने के उपाय, धातुमल की उपयोगिता आदि का ज्ञानवर्धक विवरण पुस्तक में दिया गया है। नया इस्पात उत्पादन की दृष्टि से विद्युत आर्क भट्टी, प्रेरण भट्टी आदि अनेक प्रकार की भट्टियों, उनकी प्रक्रियाओं और उनसे प्राप्त होने वाले माल अयस्क आदि के बारे में भी जानकारी दी गई है।

इस्पात की ढलाई के बाद उसके परिशोधन की क्रियाएं, जैसे ऑक्सीजन निष्कासन, विराबीनन, फॉस्फोरस निष्कासन, विगैसन, निर्वातन, धातुमल और इस्पात मिश्रातु का परिष्करण आदि की समस्याओं और उपचारों का सरल भाषा में वर्णन किया गया है।

गलित इस्पात को विभिन्न आकारों में ढालने के लिए उनका वेल्लन किया जाता है जो क्षैतिज वेल्लन, ऊर्ध्व वेल्लन, तिर्यक वेल्लन, चादर वेल्लन, तप्त–अतप्त वेल्लन, खांचेदार वेल्लन आदि की क्रियाओं द्वारा अभीष्ट उत्पादों की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

विषय की तकनीकी जानकारी के साथ–साथ लेखक ने इस्पात और इस्पात उद्योग के देशीय–विदेशी महत्व को भी उजागर किया है। कुल मिलाकर इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए आयोग बधाई का पात्र है।

लोहा व इस्पात उत्पादन, 2013
लेखक : डॉ. गोकुलानंद मुखर्जी, मूल्य : 187.00

मृदा संरक्षण एवं प्रबंधन

प्रस्तुत पुस्तक का लेखन इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. दिनेश मणि ने किया है। डॉ. दिनेश मणि हिंदी में विज्ञान–लेखक के रूप में विज्ञान–जगत में सुविख्यात हैं। उनकी पुस्तकें मानक हिंदी शब्दावली, नवीनतम विषय–ज्ञान और प्रवाह–पूर्ण भाषा की दृष्टि से श्रेष्ठ मानी जाती हैं।

'मृदा संरक्षण एवं प्रबंधन' में मृदा–संबंधी समस्त वैज्ञानिक जानकारी समाहित करने का प्रयास किया गया है। मृदा मानव जीवन, या यो कहें कि प्राणिमात्र के जीवन का मूलभूत आधार है। वनस्पति विज्ञान तथा कृषि का आधारभूत अंग है। अतः मृदा की समस्याओं पर पूरे विश्व को ध्यान देने की आवश्यकता है।

लेखक ने बताया है कि मृदा की प्रमुख समस्याएं मृदा अपरदन, मृदा संरक्षण का अभाव और भूमि पुनरुद्धार हैं। मृदा अपरदन की विभिन्न प्रवृत्तियों, कारणों और उनसे होने वाली हानियों का वर्णन करते हुए मृदा–उपयोग–क्षमता के आधार पर मृदा का वर्गीकरण तथा मृदा संरक्षण–प्रबंधन की विभिन्न प्रविधियों की विस्तृत व्याख्या करते हुए आवरण सस्यों का उत्पादन करने, सही फसल चक्र अपनाने, घास प्रबंधन करने, वेदिकाएं बनाने, अवनालिकाओं का निवारण एवं नियंत्रण, वनस्पति स्थापन भेडबंदी, वन रोपण और रोपण के लिए उपयोगी जातियों की पहचान, वायुजनित अपरदन का प्रबंधन, समोच्च पट्टिकाओं का निर्माण, वानिकी एवं चरागाह प्रबंधन आदि विभिन्न मृदा–संरक्षण उपायों को सविस्तार व्याख्यापित किया गया है।

लेखक ने इस दिशा में भूमि पुनरुद्धार के महत्व का प्रतिपादन करते हुए अनेक उपयोगी सारणियां देकर पुस्तक के महत्व को बढ़ाया है। पुस्तक के अंत में हिंदी–अंग्रेजी शब्दसूची देकर उसे पाठकों के लिए अधिक उपयोगी बनाया गया है।

मृदा संरक्षण एवं प्रबंधन, 2013
लेखक : डॉ. दिनेश मणि

दोनों पुस्तकों के समीक्षाकार : देवेंद्र दत्त नौटियाल, पूर्व सचिव, वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग, दिल्ली

लेखक-परिचय

1. विजय चितौरी
संपादक, नई आवाज (त्रैमासिक)
विज्ञान परिषद, प्रयाग
इलाहाबाद–211019 (उ.प्र.)

2. डॉ. सी. पी. सिंह
सहायक प्रोफेसर, प्राणिविज्ञान विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
नारायणनगर, पिथौरागढ़ (उत्तराखंड)
पिन कोड–262550

3. नवनीत कुमार गुप्ता
परियोजना अधिकारी, विज्ञान प्रसार
(विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग)
सी–24, कुतुब संस्थानिक क्षेत्र
नई दिल्ली–110016

4. डॉ. आर. एस. सेंगर एवं
विवेकानंद प्रताप राव
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं
प्रौद्योगिक विश्वविद्याल, मेरठ–25010

5. श्री घनश्याम तिवारी
अपर निदेशक, राजभाषा एवं संगठन पद्धति
निदेशालय, डीआरडीओ भवन, राजाजी मार्ग
नई दिल्ली–110011

6. डी. वी. एस. सेठी
अपर निदेशक, सामग्री निदेशालय
डीआरडीओ भवन, राजाजी मार्ग
नई दिल्ली–110011

7. श्री सुरेश तिवारी
एच 1202, आम्रपाली विलेज
न्याय खंड II, काला पत्थर के पास
इंदिरापुरम, गाजियाबाद (उ.प्र.)

8. डॉ. विजय कुमार उपाध्याय
राजेंद्र नगर हाउसिंग कॉलोनी
डॉ. जमगोड़िया, बरास्ता जोधाडीह
जिला बोकारो, झारखंड
पिन कोड–827013

12. डॉ. दीपक कोहली
5/104, विपुल खंड, गोमती नगर
लखनऊ–226010 (उ.प्र.

ooo

आयोग के प्रकाशन

बृहत पारिभाषित शब्द-संग्रह

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : विज्ञान खंड 1,2 (अंग्रेजी-हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1994, पृ. 2058)	713	174.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : विज्ञान खंड 1,2 (अंग्रेजी-हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1990, पृ. 2058)	684	150.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : मानविकी और सामाजिक खंड 1,2 (अंग्रेजी-हिंदी) (परिवर्धित संस्कारण 1992, पृ. 1297)	706	292.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : 2 मानविकी और सामाजिक विज्ञान (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 650)	758	350.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एंव इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)(1986, पृ 240)	568	48.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : कृषि विज्ञान (अंग्रेजी-हिंदी)(पुनर्मद्रुण 1991, पृ 223)	695	278.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : मुद्रण इंजीनियरी (अंग्रेजी-हिंदी)(1991, पृ 104)	692	48.50
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : आयुर्विज्ञान, भेषज विज्ञान, शारीरिक नृविज्ञान (अंग्रेजी-हिंदी)(1991, पृ 693)	698	239.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : पशुचिकित्सा (अंग्रेजी-हिंदी)(1994, पृ 172)	718	82.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : विज्ञान (अंग्रेजी-हिंदी)(द्वितीय संस्करण 1997, पृ 819)	757	236.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : इंजीनियरी (सिविल, विदयुत, यांत्रिकी)(अंग्रेजी-हिंदी)(पुनर्मुद्रण 1999, पृ 566)	692	340.00
बृहत् पारिभाषित शब्द - संग्रह : प्राणिविज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)(2003, पृ 526)	885	311.00

विषयवर शब्द-संग्रह/संग्रह/शब्दावली/परिभाषा कोश

अर्थशास्त्र

अर्थमिति परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1980, पृ. 245)	499	17.00
अर्थशास्त्र परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1989, पृ. 232)	665	117.00
अर्थशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2003, पृ. 110)	843	185.00
अर्थशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2003, पृ. 144)	824	183.00
अर्थशास्त्र शिक्षार्थी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2010, पृ. 60)	918	137.00
अर्थशास्त्र मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2010, पृ. 139)	--	नि:शुल्क*

आयुर्विज्ञान

आयुर्विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 488)	805	450.00
आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द,एवं वाक्यांश (अंग्रेजी-तमिल-हिंदी) (2002, पृ. 333)	812	279.00
आयुर्विज्ञान परिभाषा कोश (शल्य विज्ञान) (अंग्रेजी-हिंदी) (2004, पृ. 407)	8471	338.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
आयुर्विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया) (2005, पृ. 613)	--	नि:शुल्क*
आयुर्विज्ञान प्रतिकूल प्रतिक्रिया शब्दावली (2009, पृ. 196)	907	273.00
आयुर्विज्ञान परिभाषा कोश (संस्कृत-अंग्रेजी) (2010, पृ. 207)	925	260.00
आयुर्विज्ञान शंब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2010, पृ. 462)	927	517.00
रोग निदान एवं विकृति शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2011, पृ. 419)	926	401.00
आयुर्विज्ञान शंब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (पृ. 261)	943	मुद्रणाधीन

इंजीनियरी

सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1991, पृ. 112)	709	61.00
रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 167)	739	51.00
विद्युत इंजीनियरी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 156)	773	81.00
यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1999, पृ. 135)	696	94.00
पर्यावरण इंजीनियरी मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2001, पृ. 88)	--	नि:शुल्क*
यांत्रिक इंजीनियरी मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2008, पृ. 134)	--	नि:शुल्क*

इतिहास

इतिहास परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1982, पृ. 297)	548	20.50
इतिहास शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 300)	813	404.00

कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी

कंप्यूटर विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1992, पृ. 144)	702	102.00
कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1995, पृ. 147)	714	57.00
कंप्यूटर विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 115)	--	नि:शुल्क*
दूरसंचार की मूलभूल शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2001, पृ. 191)	--	नि:शुल्क*
कंप्यूटर विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोड़ो) (2002, पृ. 121)	836	78.00
सूचना प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2005, पृ. 393)	884	231.00
प्रसारण तकनीकी शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2009, पृ. 148)	905	310.00

कला और संगीत

पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1984, पृ. 95)	569	28.55
नाट्यशास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2006, पृ. 254)	888	202.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2006, पृ. 171)	889	75.00

कृषि

रेशम विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 85)	733	50.00
पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 185)	--	75.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
कृषि कीट विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 213)	751	75.00
मृदा विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 149)	756	77.00
वानिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2007, पृ. 437)	896	447.00
कृषि विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2008, पृ. 127)	--	नि:शुल्क*
गणित		
गणित शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 357)	728	143.00
गणित की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 135)	--	नि:शुल्क*
गणित परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 333)	822	203.00
सांख्यिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) Out of Stock	--	18.00
गणित शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 105)	814	189.00
गणित शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2003, पृ. 152)	852	335.00
गुणता नियंत्रण		
गुणता नियंत्रण शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी) (1996, पृ. 67)	729	38.00
गृहविज्ञान		
गृह विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 144)	750	60.00
गृह विज्ञान शब्द-संग्रह शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2009, पृ. 148)	--	नि:शुल्क*
जीव विज्ञान		
सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1977, पृ. 287)	497	24.00
पुरावनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1990, पृ. 161)	691	80.50
वनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश (संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण) (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 204)	752	75.00
पादप आनुवंशिक परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 185)	753	75.00
सूक्ष्मजैविकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 193)	755	45.00
कोशिका जैविकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 197)	742	62.00
पादप रोग विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 138)	768	75.00
वनस्पतिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 266)	760	86.00
सूत्रकृषि विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2000, पृ. 263)	785	125.00
कोशिका जैविकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2000, पृ. 321)	790	121.00
कोशिका तथा अणुजैविक शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2001, पृ. 316)	796	348.00
प्राणिविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2001, पृ. 540)	803	216.00
प्राणिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 204)	810	205.00
वनस्पतिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 185)	842	208.00
पर्यावरण विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2004, पृ. 429)	870	381.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
प्राणिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो) (2007, पृ. 184)	897	417.00
प्राणिविज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2008, पृ. 247)	--	नि:शुल्क*
पर्यावरण विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2009, पृ. 160)	--	नि:शुल्क*
वनस्पतिविज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2009, पृ. 162)	--	नि:शुल्क*
जीवविज्ञान शिक्षार्थी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2010, पृ. 294)	922	212.00
पर्यावरण विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (पृ. 348)	938	मुद्रणाधीन
दर्शनशास्त्र		
भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड-1 (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 170)	775	151.00
भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड-2 (अंग्रेजी-हिंदी) (1999, पृ. 230)	779	124.00
भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड-3 (अंग्रेजी-हिंदी) (1999, पृ. 340)	780	136.00
दर्शन शास्त्र शब्द संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 160)	821	61.00
दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2003, पृ. 331)	850	198.00
पत्रकारिता		
पत्रकारिता परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1990, पृ. 164)	681	87.00
पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 184)	767	12.25
पुरात्व विज्ञान		
पुरात्व विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1994, पृ. 453)	711	509.00
पुरात्व और वास्तुकला की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2001, पृ. 68)	--	नि:शुल्क*
पुरात्व विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2003)	--	157.00
पुरात्व विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2003, पृ. 78)	846	157.00
पुस्तकालय विज्ञान		
पुस्तकालय विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1987, पृ. 186)	593	49.00
पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2010, पृ. 220)	912	375.00
प्रशासन		
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 400)	840	390.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिन्दी-बोडो) (2007, पृ. 549)	899	720.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण 2008, पृ. 511)	900	20.00
मूलभूत प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2008, पृ. 202)	--	नि:शुल्क*
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (पुनर्मुद्रणस 2010, पृ. 479)	935	20.00
प्रबंध विज्ञान		
प्रबंध विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1991, पृ. 191)	700	170.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
मनोविज्ञान		
मनोविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2000, पृ. 116)	794	247.00
मनोविज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2001, पृ. 86)	468	नि:शुल्क*
मनोविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 470)	820	108.00
मनोविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (पृ. 533)	941	मुद्रणाधीन
भाषा विज्ञान		
भाषा विज्ञान कोश-खंड-1 (अंग्रेजी-हिंदी) (1989, पृ. 212)	664	89.00
भाषा विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी) (1992, पृ. 249)	707	113.00
भाषा विज्ञान कोश-खंड-2 (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 295)	764	59.00
भूगोल		
मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1990, पृ. 361)	663	231.00
भूगोल शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 369)	736	200.00
भूगोल मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 156)	--	नि:शुल्क*
भूगोल परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) Out of Stock	--	10.00
मानव भूगोल परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) Out of Stock	--	18.00
प्राकृतिक विपदा शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2000, पृ. 202)	791	17.00
जलवायु विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 204)	801	131.00
भूगोल शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2002, पृ. 426)	833	515.00
भूगोल शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2003)	--	515.00
भूविज्ञान		
पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1992, पृ. 188)	733	173.00
शैलीविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1993, पृ. 168)	708	153.00
भूविज्ञान शब्द-कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 328)	727	88.00
भूविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 284)	726	63.00
खनन एवं शब्द संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 128)	737	32.00
सरंचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 48)	734	15.00
भूविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1997, पृ. 141)	--	नि:शुल्क*
संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1998, पृ. 60)	765	13.50
कोयला उद्योग की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1999, पृ. 64)	--	नि:शुल्क*
आर्थिक भूविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 70)	829	75.00
भूभौतिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 60)	830	67.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
शैलविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 185)	729	82.00
खनिज विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 174)	818	130.00
अनुपयुक्त भूविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 155)	817	115.00
संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 69)	826	73.00
जीवश्म विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 181)	827	129.00
भूविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2003)	827	129.00
भूविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2003, पृ. 284)	844	306.00
भौतिकी		
तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1985, पृ. 76)	--	10.00
अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1994, पृ. 138)	717	45.00
भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 536)	741	119.00
भौतिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (2002, पृ. 953)	804	700.00
भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 163)	806	203.00
अर्धचालक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2006, पृ. 41)	890	140.00
इलेक्ट्रॉनिकी शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2007, पृ. 98)	893	349.00
भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो) (2007, पृ. 322)	898	652.00
भौतिकी शिक्षार्थी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2010, पृ. 102)	917	219.00
भौतिकी मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (पुनर्मुद्रण 2010)	--	नि:शुल्क*
प्लाज्मा भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2011, पृ. 187)	930	1589.00
रसायन		
उच्चतर रसायन परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1978, पृ. 557)	611	17.00
इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1988, पृ. 357)	661	55.00
रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1988, पृ. 272)	--	25.00
धातुकर्म परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1996, पृ. 449)	731	278.00
रसायन शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2003, पृ. 112)	823	137.00
रसायन शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2005, पृ. 918)	855	592.00
रसायन शिक्षार्थी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी) (2009, पृ. 83)	920	84.00
रसायन मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2009, पृ. 140)	--	नि:शुल्क*
राजनीति विज्ञान		
राजनीति विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1991, पृ. 356)	697	343.00
राजनीति विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 121)	815	186.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
राजनीति विज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2003, पृ. 127)	847	211.00
राजनीति विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2003, पृ. 67)	--	नि:शुल्क*
रक्षा		
समेकित रक्षा शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1993, पृ. 343)	699	284.00
लोक प्रशासन		
लोक प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1995, पृ. 98)	721	52.00
वाणिज्य		
वाणिज्य परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1978, पृ. 173)	498	24.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (1992, पृ. 172)	698	259.00
पूंजी बाजार एवं संबद्ध शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2000, पृ. 185)	786	79.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया) (2000, पृ. 188)	811	162.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी-बोडो) (2000, पृ. 169)	835	194.00
वाणिज्य मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2013, पृ. 134)	--	नि:शुल्क*
शिक्षा		
शिक्षा परिभाषा कोश खंड-1 (अंग्रेजी-हिंदी) (1978, पृ. 197)	493	13.50
शिक्षा परिभाषा कोश खंड-2 (अंग्रेजी-हिंदी) (1989, पृ. 205)	680	99.00
शिक्षा शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2002, पृ. 151)	809	137.00
शिक्षा शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2002, पृ. 82)	834	97.00
समाज शास्त्र		
समाज कार्य परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1978, पृ. 183)	496	16.25
समाज शास्त्र परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1987, पृ. 199)	570	71.40
समाज शास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-ओडिया) (2003)	--	118.00
समाज शास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो) (2003, पृ. 74)	841	118.00
अन्य		
अंतरराष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश (अंग्रेजी-हिंदी) (1994, पृ. 295)	715	344.00
संसदीय कार्य शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) (2008, पृ. 87)	901	130.00

* ये मूलभूत शब्दावलियां आयोग द्वारा आयोजित कार्यक्रमों (कार्यशालाएं/संगोष्ठियाँ/प्रशिक्षण कार्यक्रम/अभिविन्यास कार्यक्रम) में वितरित की जाती है।

संदर्भ-ग्रंथ

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
कृषिजन्य दुर्घटनाएं (1983, पृ. 212)		**25.00**
विश्व के प्रमुख धर्म (1984, पृ. 293)	**571**	**118.00**
विकास मनोविज्ञान भाग-1 (		**40.00**
विकास मनोविज्ञान भाग-2 (		**30.00**
बाल मनोविकास (1985, पृ. 252)	**572**	**58.00**
इलेक्ट्रॉनिक मापन (1986, पृ. 193)	**587**	**31.00**
सैन्य विज्ञान पाठ संग्रह (1987, पृ. 282)	601	100.00
द्रवचालित मशीन (1987, पृ. 579)	584	66.50
सूक्ष्म तरंग मशीन (1989, पृ. 335)	679	470.00
लोहीय तथा अलोहीय धातु (1989, पृ. 178)	666	68.00
लैटर प्रैस मुद्रण (1990, पृ. 407)	690	270.00
विश्व के प्रमुख दार्शनिक (1990, पृ. 696)	685	433.00
ठोस पदार्थ यांत्रिकी (1995, पृ. 452)	720	995.00
ऐतिहासिक नगर (1996, पृ. 145)	723	195.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर (1996, पृ. 121)	724	109.00
समुद्री यात्राएँ (1996, पृ. 90)	725	79.00
वैज्ञानिक शब्दावली : अनुवाद एवं मौलिक लेखन (1996, पृ. 274)	730	34.00
विश्व दर्शन (1997, पृ. 115)	759	53.00
अपशिष्ट प्रबंधन (1998, पृ. 53)	761	17.00
कोयला : एक परिचय (1998, पृ. 122)	772	294.00
रत्न विज्ञान : एक परिचय (1999, पृ. 169)	776	115.00
पर्यावरणीय प्रदूषक : नियंत्रण तथा प्रबंधन (1998, पृ. 154)	766	23.25
वाहितमल एवं आपक : उपयोग तथा प्रबंधन (1998, पृ. 65)	762	40.00
2 दूरीक एवं 2 मानकित समष्ठियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन (1999, पृ. 94)	783	68.00
भारत में प्याज एवं लहसन की खेती (1999, पृ. 137)	782	82.00
पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग (1999, पृ. 208)	781	60.00
मृदा-उर्वरता (2000, पृ. 537)	798	410.00
ऊर्जा-संसाधन और संरक्षण (2000, पृ. 136)	789	105.00
पशुओं के कवकीय रोग, इनका उपचार एवं नियंत्रण (2000, पृ. 179)	787	93.00

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
पराज्यामितीय फलन (2000, पृ. 101)	793	90.00
भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण (2001, पृ. 671)	799	343.00
भारत में भैंस उत्पादन एवं प्रबधन (2001, पृ. 485)	792	540.00
भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन (2001, पृ. 458)	795	559.00
सामाजिक एवं प्रक्षेत्र वानिकी (2001, पृ. 280)	796	54.00
समकालीन भारतीय दर्शन के कुछ मानववादी चिंतक : तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन (2002, पृ. 189)	806	153.00
स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन (2002, पृ. 157)	805	176.00
भारतीय कृषि का विकास (2002, पृ. 206)	831	155.00
कोयला : एक परिचय (परिवर्धित संस्करण 2003, पृ. 219)		
भविष्य की आशा : हिंद महासागर (2003, पृ. 219)	856	154.00
इस्पात परिचय (2003, पृ. 85)	853	146.00
जैव-प्रौद्योगिकी : अनुसंधान एवं विकास (2003, पृ. 82)	848	134.00
पृथ्वी : उद्भव और विकास (2003, पृ. 150)	849	86.00
इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (2003, पृ. 87)	854	90.00
प्राकृतिक खेती (2004, पृ. 149)	867	167.00
हिंदी विज्ञान पत्रकारिता : कल, आज और कल (2004, पृ. 172)	869	167.00
मानसून पवन : भारतीय जलवायु का आधार (2004, पृ. 85)	870	112.00
हिंदी में स्वतंत्रता परवर्ती विज्ञान लेखन (2004, पृ. 219)	868	280.00
विश्व के प्रमुख धर्मों में धर्मसमभाव की अवधारणा : एक तुलनात्मक अध्ययन (2005, पृ. 465)	883	490.00
मैग्नेसाइट : एक भूवैज्ञानिक अध्ययन (2006, पृ. 253)	887	214.00
मृदा एवं पादप पोषण (2006, पृ. 331)	885	367.00
नलकूप एवं भौमजल अभियांत्रिकी (2006, पृ. 334)	886	398.00
पादपों में कीट प्रतिरोध और समेकित कीट प्रबंधन (2006, पृ. 263)	891	367.00
पृथ्वी से पुरातत्व (		40.00
भारत के सात आश्चर्य (2009, पृ. 66)	900	335.00
पादप सुरक्षा के विविध आयाम (2010, पृ. 285)	916	360.00
पादप सुरक्षा एवं पौधशाला प्रबंधन (2010, पृ. 231)	915	403.00
खनि आयोजना के सिद्धांत और अनुप्रयोग (पृ. 362)	940	मुद्रणाधीन
मृदा संरक्षण एवं प्रबंधन (पृ. 261)	943	मुद्रणाधीन

ooo

ग्राहक फार्म

सेवा में :
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिम खंड-7 रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली- 110066

महोदय,

कृपया मुझे **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए .....से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्रफ्ट सं. .....दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम .....

पूरा पता .....

.....

भवदीय

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्क :	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
प्रति अंक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 14.00	पौंड 1.64	डालर 4.84
वार्षिक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 50.00	पौंड 5.83	डालर 18.00
प्रति अंक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 8.00	पौंड 0.93	डालर 10.80
वार्षिक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 30.00	पौंड 3.50	डालर 2.88

डिमांड ड्रफ्ट ''अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग'' के पक्ष में नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम व पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण-पत्र भी संलग्न करे:

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी / श्रीमती / श्री..... इस विद्यालय / महाविद्यालय / विश्वविद्यालय के ..... विभाग का छात्र / की छात्रा है।

हस्ताक्षर

(प्राचार्य / विभागाध्यक्ष)
(मोहर)

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।

2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25 प्रतिशत की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।

3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी किया जाता है। अपेक्षित धनराशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिक शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T., New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात् ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।

4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉर्वर्डिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।

5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें सड़क परिवहन से भेजी जाती हैं तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।

6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

7. सड़क परिवहन से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके स्वयं पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।

8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नहीं होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

9. पुस्तकों की पैंकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

10. सामान्यत: बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नहीं होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में अन्य पुस्तकें ही दी जाएंगी।

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र. सं.	पता
1.	**प्रकाशन नियंत्रक** प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय के पीछे सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054
2.	**किताब महल** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड्ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली - 110001
3.	**पुस्तक डिपो** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के. एस. राय मार्ग, कोलकाता - 700001
4.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई - 400020
5.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली - 110001
6.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, (लॉयर्स चैंबर) दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली - 110003
7.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, शाहजहां रोड धौलपुर हाउस, नई दिल्ली - 110001

© भारत सरकार
प्रकाशन-नियंत्रक

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
महाप्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित।